Chapter- 2

द्वितीय अध्याय	**उपन्यास साहित्य**
	वस्तु, चरित्र, समस्या, देश काल तथा समाज - चित्रण
	भाषा - शैली, उद्धेश्य तथा निष्कर्ष ।

द्वि ती य अ ध्या य

उपन्यास साहित्य

उपन्यास शब्द "उप" और "न्यास" दो शब्दों से मिलकर बना है । "उप" का अर्थ "निकट" और "न्यास" का अर्थ "रखी हुई" । इस प्रकार उपन्यास वह रचना है जिसे पढ़कर जीवन की वास्तविक यथार्थवादी प्रक्रियाओं का आभास हो ओर निकटता की अभिव्यक्ति हो ।

मुंशी प्रेम चन्द ने उपन्यास के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–– "मैं उपन्यास को मानव–चरित्र पर प्रकाश डालने वाला और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"

आज उपन्यास जीवन की परोक्ष और अपरोक्ष अभिव्यक्ति का सबलतम माध्यम है और वह उसकी व्यापकता ओर समग्रता को छू रहा है । उपन्यास की धारा जीवन की तरह विस्तृत ओर व्यापक है । उपन्यास के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि –"

(1) उपन्यास एक गद्य–रचना है ।

(2) उपन्यास में कथा तत्व विद्यमान रहता है ।

(3) उपन्यास, मानव–जीवन से सम्बद्ध रहता है ।

(4) उपन्यास में मानव–चरित्र और घटनाओं का सूक्ष्म चित्रण होता है ।

(5) उपन्यास का विषय–क्षेत्र व्यापक होता है ।

गोविन्द मिश्र के उपन्यासों की वस्तु, चरित्र, समस्या, देश काल तथा समाज चित्रण, भाषा–शैली और उद्देश्य का क्रमिक विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

वस्तु :

1. वह अपना चेहरा

गोविन्द मिश्र का यह एक लघु उपन्यास कहा जाता है । इसकी कहानी एक आहत अहं पर आधारित है । आहत अहं के मनोवैज्ञानिक पहलुओं और बाह्य रूपों को अच्छी तरह पकड़ा और उभारा गया है । लेखक ने मनोवैज्ञानिक बारीकी और गहनता के साथ ही कथ्य को उभारा है ।

उपन्यास का नायक शुक्ला एक छोटा-सा सरकारी अफसर है । केशव दास उसका बड़ा अधिकारी (सीनियर अफसर) है । उपन्यास की कहानी केशव दास के प्रति जो अनिश्चित और दुतर्फा दृष्टिकोण है, उसी के इर्द-गिर्द घूमती है । केशव दास के रचना से अवांछनीय सम्बन्ध है । रचना नायक की एक जमाने की मित्र और इस समय उसके कार्यालय में सहकारी है । नायक के अनुसार केशव दास वृद्ध, बीमार और ढीला अफसर है, किन्तु फिर भी अपने आपमें वह एक वजनदार व्यक्तित्व है, वह एक महत्वपूर्ण पद पर भी है और शुक्ला तथा रचना की इस दिशा में काफी सहायता भी कर सकता है । इसलिए नायक (शुक्ला) के विचार और कार्य एक ओर तो केशव दास की सहानुभूति और सहायता अर्जित करने के लिए हैं, तो दूसरी तरफ आक्रोश में आकर केशव दास को लपेटने के लिए भी दृष्टिगत होते हैं । एक ओर वह केशव दास की पुत्री रेशमा की सहायतार्थ जाता है, तो दूसरी तरफ उसके साथ फ्लर्ट भी करता है, ऐसा वह मात्र केशव दास से बदला लने के विचार से ही करता है । इन्हीं के छोरों के बीच शुक्ला निरन्तर झूलता हुआ द्विविधा में पड़ा रहता है । यद्यपि वह इस तनाव की जड़ खोजने और फिर उससे छुटकारा पाने का प्रयास करता है ।

अन्त में जब नायक शुक्ला की भेंट संयोगवश रचना से अकेले में होती है, तो वह होश-हवाश खोकर उसे अमरू के कमरे में घसीट ले जाता है और उसके साथ अर्ध

बलात्कार कर बैठता है, किन्तु वह इस विषय में स्वयं निश्चित नहीं है कि जो उसने किया, वह क्या था ? यहीं शुक्ला की निराशा और कुण्ठा अधिक बढ़ जाती है । वह हमेशा से जानता है कि रचना एक सस्ती किस्म की लड़की है । फिर भी चूंकि उसके तनाव की जड़ में वह कहीं है, इसलिए उस पर शुद्ध शारीरिक स्तर का आक्रमण ही एक मात्र इलाज था । एक प्रकार से यहाँ मिश्र जी ने बड़ी ही खूबसूरती से रचना के प्रति शुकला की प्रेम–भावनाओं की तरफ हल्का सा संकेत ही करके छोड़ दिया है । इस प्रकार के संकेत गोविन्द मिश्र की अपनी विशेषता है ।

उपन्यास की कहानी तेजी से आगे बढ़ती है और स्थितियाँ भी काफी स्वाभाविक ढ़ंग से सटीक लगती हैं ।

2. उतरती हुई धूप

गोविन्द मिश्र के इस उपन्यास "उतरती हुई धूप" में सीमित जीवनानुभव और सामान्य कथा–संगठन के मध्य गुजरती हुई आज की जिन्दगी के एक कोमल पहलू के टूटते कैनवास का चित्रण पर्याप्त रोचक ढ़ंग से किया गया है । यह भी एक लघु उपन्यास है, जा कालेज जीवन के रोमांस के काफी अच्छे, खट्टे–मीठे चित्र देता हुआ ....यथार्थ जीवन की कठोरता का खालीपन का एहसास कराता है । सम्भवतः होता यह है कि आदमी धूप से डरकर कमरे में बन्द होता है और उसे पता ही नहीं चलता कि धूप कब ढल गयी । इसमें कालेज – जीवन के रोमांस, उससे जुड़े स्वप्नों का शंकाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है।

मूलतः यह उपन्यास दो भागों में विभक्त है, प्रथम भाग पृष्ठ 56 तक नायक–नायिका के प्रेम–प्रसंगों से भरा हुआ हे । इसके कथानक नायिका के विवाहोपरान्त नायक से उसकी भेंट से प्रारम्भ होता है और बीच के अनेक पड़ाव पार कर जैसे ही नायक यह सोचता है कि नायिका उसे अब भी सहजता से उपलव्ध है, वैसे ही पटाक्षेप हो जाता है एवं नायक का स्वप्न भंग हो जाता है ।

3. लाल – पीली जमीन

गोविन्द मिश्र की यह रचना हिन्दी के कुछ चुने हुए सामाजिक उपन्यासों की श्रेणी में रखी जा सकती है । इस उपन्यास में उत्पन्न प्रत्येक व्यक्ति उखड़ने के लिए गिरने से पूर्व ही जीवन के रुप में खड़खड़ाहट करने की विवशता के लिए ही जन्मा है । असहाय, यन्त्रणामय, करूण कराहें समस्त उपन्यास में व्याप्त है । व्यक्ति और व्यक्ति के सम्बन्धों में यह मिट्टी बजती रहती है – फिर ये सम्बन्ध पति-पत्नी के हों पिता-पुत्र, माता-पुत्र, मित्र-मित्र या शत्रुता के हों । समस्त सम्बन्धों और मानवीय जीवन के स्त्रोतों की एक ही परिणति है : इस लाल पीली जमीन की विशिष्ट मिट्टी की । यह मिट्टी अपने रंग में, अपने कठोर साँचे में सबको ढालने का प्रयास करती है । इस उपन्यास में समागत परिवेश पर टिप्पणी करते हुए डॉ. चन्द्र कान्त वांदिवडेकर ने लिखा है – "एक ओर यथावतता को, यथार्थ को चित्रांकित करने वाली घटनाओं और दृश्यों की बिबमालिका लाल-पीली जमीन में आद्योपान्त व्याप्त है तो दूसरी ओर वह सहजता से प्रतीकात्मक बनकर आशय को विराटता से संपृक्त भी करती है ।"[1] वे पुनः आगे लिखते हैं – लाल-पीली जमीन का यह पूरा विश्व जंगली, हिंस, भयावह और मूल्यहीन होने पर भी कहीं भी भड़कीला नहीं है । न कहीं नाट्यात्मकता का सहारा लिया गया है । जाति-पाँत, सामाजिक स्थान और प्रतिष्ठा, आर्थिक औकात और शक्ति, मानवीय मूलभूत प्रवृत्तियों और परिवेश का दबाब, राजनीतिक दाँव-पेच-इनका कुछ जटिल रसायन उपन्यास में उबलता रहता है । पाठक अनुभव करता है एक अजीव सी अवसन्नता पत्थर की दीवार पर सिर पटक-पटक कर मरने वालों की यातनाओं का चीखता अवसाद ।[2]

"लाल-पीली जमीन" उपन्यास का परिवेश एक छोटे से शहर या कस्वे का है जो न ग्राम ही है और न शहर ही – फिर भी दोनों का अजीब और बे-मेल मिश्रण है ।

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन का आयाम – पृष्ठ 94
2. वही पृष्ठ 97

ग्राम और शहर दोनों की क्रत्रिमता ओढ़े हुए कस्बा द्वयवदन की विचित्र भूमिका में होता है । श्री लाल शुक्ल के "राग–दरबारी का "रंगनाथ" लाल पीली जमीन में केशव है ।

केशव के पिता का अनवरत विस्थापन, कंठी की हत्या, कौशल की लड़की के साथ बलातकार, यादवों और चौबों की जातिगत पार्टी, आवारा लड़कों की धाँधली और शान्ती के साथ बलात्कार और पुनः उसकी मृत्यु, राजनीतिक गुण्डागर्दी, तनाव, अपहरण, चुनाव, पुलिस का अत्याचार, लोगों की कायरता सब एक–एक जुड़ी घटनाएं हैं ।

4. "हुजूर दरबार"

गोविन्द मिश्र का यह उपन्यास "हुजूर दरबार" अपनी मौलिक अवधारणा के वृहत्तर हो गए संसार में क्रियाशील हो उठने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है । स्वतन्त्रता – प्राप्तिकाल की "पृष्टभूमि" में स्थित यह उपन्यास उस वृहत्त ऐतिहासिक परिवर्तन, सत्ता स्थानान्तरण की जटिलताओं और संधि युग की डगमागहट के बीच एक महत्वपूण्र परिप्रेक्ष्य की रचना करता है । प्रस्तुत कथा ऐतिहासिक परिवर्तन की उखाड़–पछाड़ के बीच होने और स्वतन्त्रता के उप वर्षो के बाद वस्तुओं के आकार–पुकार के दर्शन कर पाने की भूमिका प्रस्तुत करने का आभास देती है । घटनाओं और विवरणों की योजना भी ऐसी है कि पूर्वाद्ध तक वैसी अपेक्षाएँ बनी भी रहती हैं ।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में आते–आते दृश्य बंध कथाकार की मौलिक अवधारणा को संभाल लेने के प्रति अधिक सचेत दीखने लगता है । अब तक अवचेतन के स्तर पर अभिव्यक्ति असम्बद्ध से दीखते अन्तर्मुखी प्रलापों में से किसी अदृश्य तारतम्य द्वारा एक दूसरा वृत्त उबरने लगता है और अब तक राज दरबार की कथा कहने वाले कथाकार को बाहर खड़ा कर देता है और उसकी जगह रियायत के पराभाव के साथ एकतान होते हुए एक ऐसे व्यक्ति को मुख्य रुप से अवस्थित करता है जो कथा में भोक्ता भी है, दृष्टा भी, विवेचक भी और उस सारी कथा एवं चिन्ता का साक्षी भी ।

"हुजूर दरबार" एक धीमी लय में कुल मनुष्य जीवन की ट्रेजेडी के बोध को गहराते जाने वाला उपन्यास है जिसमें राजनीतिक स्थितियों के पार्श्व संगीत के स्वरों के आरोह–अवरोह में असहाय दुर्बल, विघटित मनुष्य की दुःख गाथा, कसमकससंगीत का दर्दनाक प्रभाव छोड़ती है ।

हुजूर दरबार का ऐतिहासिक काल बड़ा है । यह तीन पीढ़ियों की कथा प्रस्तुत करता है । आरम्भिक काल राजाशाही की सनातन व्यवस्था में धँसा हुआ है । काल का दूसरा छोर स्वातन्त्र्योत्तर काल के आपात काल तक एवं सत्तान्तर तक फैला हुआ है ।

इस उपन्यास की कथावस्तु इतनी जीवन–सादृश्य है कि उसको बताना हो तो उपन्यास के जीवन के दृश्योलेख के विषय में ही सतत् बोलना पड़ेगा । जीवन के एक सनातन सत्य के बहु–आगामी रूप का यह चित्रमय प्रस्तुतीकरण है ।

कथावस्तु सार :

हुजूर दरबार उपन्यास की प्रमुख घअनाएँ एक मध्यम शैली और श्रेणी की रियासत में घटित होती है एवं कथनायक हरीश से लेकर सभी पात्रों का सम्बन्ध इस रियासत के परिवेश से जुड़ा हुआ है । इसीलिए हरीश के समकक्ष ही इस रियासत के महाराजा रूद्र प्रताप को भी इस उपन्यास में महत्व प्राप्त है । दो पत्नियों के रहते हुए वयस्क अवस्था में भी राजा नेपाल राजधानी की सुन्दरी और तरूणी राजकन्या से विवाह करने में संकोच नहीं करता है । विवाह के समय उपस्थित रहने हेतु समय न मिलने के कारण उसकी तलवाार के साथ विवाह सम्पन्न होता है । नेपाल की राजकन्या – नेपाल की सरकार है । इस नेपाल सरकार के साथ नायक हरीश का महत्वपूर्ण रिश्ता (सम्बन्ध) है । इसी सन्दर्भ में हरीश के घर के साथ राजघराने की स्त्रियों के रहस्यमय सम्बन्ध उत्पन्न होते हैं । राजा रूद्र प्रताप का मन राधा नाम कीकोमल और नादान युवती पर आ जाता है । दशहरे के दिन खेल देखते समय राजा का ध्यान इस लड़की की ओर अनायास ही चला जाता है और नौकरों

द्वारा उसे बुलवाकर तथा उसके गरीब माँ–बाप को धन देकर अपने पास रख लेते हैं । राधाबाई के साथ महाराज के सम्बन्ध स्थापित होने पर उसका रूपान्तरण एक निष्ठावान स्त्री में हो जाता है । शिकार और शराब के प्रति तथा सुन्दर इमारतों, बाग–बगीचों के प्रति भी उनकी आसक्ति कम नहीं है, किन्तु वह न्याय प्रिय भी है ।

राजा रूद्र प्रताप के पिता ने एक आदिवासी युवती को भी अपने पास रखा था । उससे उत्पन्न राजपुत्र अभिमानी और उछण्ड था । रूद्र प्रताप का एक बड़ा बदमाश षड्यन्त्रकारी और स्वार्थी दीवान छोटे लाल हैं जो राधाबाई पर आसक्त हो जाता है और अपने षड्यन्त्र से उसे राजा की रखैल बनने को बाध्य कर देता है । अन्त में उसका धन लूटकर उसकी हत्या भी करा देता है । इसी रियासत के भूतपूर्व दीवान का पुत्र बख्तावर सिंह एक व्यापारी बन कर रूद्र प्रताप के जमाने में जी हुजूरी करता है, लेकिन प्रजामण्डल के सत्ता में आने पर सत्ताधारी मन्त्रियों के गले में लम्बी सी फूल माला डालने के लिए तथा रियासती शासन के विरूद्ध भाषण देने के लिए भी तैयार हो जाता है । यही आगे चलकर नेपाल सरकार की मिल खरीदकर चलाता है ।

हुजूर साहब के वर्ग पर आश्रित वर्ग है हरीश । दादा के अनुष्ठान के फलस्वरूप निपुन्निक सन्तान वाली रियासत के राजा को पुत्र प्राप्ति हुई और दादा पुजारी से वे राजगुरू बन गए । मठ की स्थापना हुई और बस्ती बढ़ गयी । इस घराने के और राजघराने के सम्बन्ध दादा के जमाने से ही रहस्यमय रहे । राजा रूद्र प्रताप की माता और हरीश के पिता का देह सम्बन्ध भी था । इस घटना का परिणाम हरीश की माँ और बाप के मन पर पड़ा । फलतः हरीश की माँ के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ । हरीश की माँ के मन में यही चिन्ता और डर रहता है कि उसके सम्बन्ध भी राजघराने से होंगे और यह सम्बन्ध बनता भी है । नेपाल सरकार एम.ए. उत्तीर्ण हरीश को हिन्दी भाषा के शिक्षण हेतु बुलाती है । कालान्तर में यह सोचकर कि मैं नेपाल सरकार की वासना का एकमात्र साधन बन गया हूँ, हरीश के मन में तीव्र पीड़ा होती है ।

इधर मठ का काम करने के लिए आये हरीश के पिताजी के एक दूर के रिश्तेदार की कन्या उमा के मन में हरीश के प्रति बचपन से ही आत्मीयता थी । जो स्थिति हरीश की माँ की थी, वही राजघराने की लेकर उमा की भी हुई । उमा जैसी सात्विक लड़की के दुःख का एहसास, नेपाल सरकार की उदासीनता का चुभने वाला मान और राजघराने से सम्बन्धित रहने पर सभी विकास के द्वार बन्द होने का आभास– ये कारण उसे पटना जाने को बाध्य कर देते हैं ।

दूसरे और रियासत के बाहर गाँधीजी के नेतृत्व में ब्रिटिशों के साथ प्रचण्ड संघर्ष चल रहा था, वैसे ही खरे साहब के नेतृतव में प्रज़ा मण्डल आन्दोलनरत था । खरे साहब लोक सेवक, त्यागी और निःस्वार्थ देशभक्ति के प्रतीक थे । जब देश स्वातन्त्रय द्वारा पर आया और सत्ता प्राप्ति का अवसर आया तो खरे को एक ओर हटकर मुक्त होना पड़ा । हरीश भी मुक्ति के लिए बेचैन था । फलतः दोनों को जन–मुक्ति के रास्ते से जाना था और वे कंधा से कन्धा मिलाकर मुक्ति हेतु संघर्ष करने लगे । खरे का त्यागपूर्ण और स्पष्ट वादी व्यक्तित्व किसी को अच्छा नहीं लगता था, और उनकी हत्या करा दी गयी । रियासत का हुज़ूर वर्ग अलग हुआ लेकिन नया हुजूर वर्ग उत्पन्न होता है । सत्ता के इस खेल में सत्पक्ष के पास जितने मोहरे थे, वे सब बाहर फेंक दिए गए और रूद्र प्रताप की रियासत भारत में विलीन हो जाती है । उन्हें एक सामान्य नागरिक का जीवन बिताना पड़ता है । हरीश को भी रियासत से बाहर कर दिया जाता है – अधिक बड़ी सत्ता का खिलौना बनने के लिए टूटकर गिरने के लिए और तड़पाये जाने के लिए ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ये घटनाएं अधिक भयावह राजनीति का रूप धारण करती है । यह सत्तान्तर इस प्रकार सँघातक एवं भयंकर होता है इस बात को मिश्र जी ने प्रभावपूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुत किया है ।

5. <u>तुम्हारी रोशनी में</u>

यह उपन्यास एक उच्च स्तरीय शिक्षित और बुद्धिजीवी वर्ग की कथा है, जिसमें

स्त्री पुरूष के मित्रवत् सम्बन्धों को नकारा नहीं जा सकता । सुवर्णा एक ऐसे ही परिवार की महिला है जो उच्च शिक्षित, बुद्धिजीवी, रूपवती और आत्मनिर्भर है । वह एक अच्छे पद पर आसीन है और हर तरह से समर्थ है, और वह पूरी तरह से पूर्णता प्राप्त करना चाहती है । उपन्यास नायिका प्रधान है, पूरी कथा नायिका के इर्द गिर्द ही घूमती रहती है।

इस उपन्यास में लेखक ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि पूरी तरह से पूर्णता नहीं पायी जा सकती, क्योंकि कोई भी व्यक्ति न तो स्वयं पूर्ण होता है और न दूसरे को पूर्णता दे सकता है । सुवर्णा अपनी जिन्दगी को पूरी तरह से पूर्णता के साथ जीना चाहती है । वह जिन्दगी का हर लम्हा एक काल्पनिक तरीके से खुशनुमा बनाकर जीना चाहती है । वह जिन्दगी की असलियत से दूर रह कर अपने पति में वह सब गुण चाहती है जो एक पूर्ण मानव में होते हैं । वह चाहती है कि उसका पति सदैव ख्याल रखे, यदि वह वचकानि हरकतें करें तो उसमें उसका साथ दें, जैसे अनन्त देता है । बिना बजह दौड़ लगाना, दौड़ते चले जाना, दौड़ते हुए आइस क्रीम खाना, उसकी बुद्धि और सौन्दर्य की बराबर तारीफ करे, दूसरे श्याम मोहन की तरह से व्यवहारिक होना, सभा, सोसायटी अपने खुशं मिजाज और हँसी से सबको हल्का, फुल्का करना, बड़ी बात को हँसी में उड़ाकर तनाव मुक्त रहना ।

दीपक की तरह उस पर कवितायें करें, और सोम जैसा पागल प्रेमी जो दीवाने पन की हद तक उसे प्यार करे । सोम उम्र में उससे छोटा होते हुए भी उसी के साथ शादी करने की बात करता है, न होने पर जिन्दा न रहने की बात भी करता है । इस प्रकार उसे एक ऐसे पूर्ण पुरूष की तलाश है । जिसमें ये सब गुण हो, और वह अपने जीवन को पूर्णता के साथ जी सके । जब ये नहीं हों/पाता तो वह अलग–अलग व्यक्तियों के साथ अपना इसी तुष्टि की पूर्ति के लिए अलग–अलग भटकती हुई अपने को तुष्टि पूर्ति के भुलावे में रखती है । वह मृग मरीचिका वनी विभिन्न व्यक्तियों में अपने अभावों को मरना चाहती है किन्तु बाद में असफल रहती है, उसका अन्त भी दुःख–पूर्ण होता है, उसका घर

परिवार, सब उससे अलग हो जाते हैं । वह मानसिक द्वन्द्व में फँस जाती है, और अन्त में वह यह निर्णय लेने में भी अपने को असमर्थ पाती है, कि उसे अपने बच्चों और पति के पास जाना चाहिये, या अनन्त के पास । इस असमंजस की स्थिति में ही उपन्यास का अन्त हो जाता है ।

यह उपन्यास उच्च स्तरीय, शिक्षित, बौद्धिक और आधुनिक समझे जाने वाले समाज पर लिखा गया है । इस समाज के लोग ऊपर से बहुत आधुनिक होते हुए भी आन्तरिक रूप से अपनी वही परिपाटी अपनाये हुए । इस समाज में स्त्री का पुरूष सम्बन्ध, पुरूष के स्त्री के साथ सम्बन्ध, उनके स्टेटस, उनके शिक्षित, बौद्धिक, आधुनिक और उच्च स्तर की पहचान है ।

6. धीरे समीरे

"धीरे समीरे" उपन्यास में गोविन्द मिश्र ने ब्रज यात्रा का बहुत ही मनोरम, मनोहारी चित्र खींचा है ब्रज के यात्रा स्थलों, उनसे सम्बन्धित पौराणिक लोक कथाओं से ऐसे परिवेश की रचना की है कि समूची ब्रज संस्कृति हमारी भारतीय परम्परा उठकर हमारे सामने दृष्टिगोचर हो जाती है । और उसके तहत आज की मानवीय प्रवृत्ति का भी विश्लेषण किया है ।

ब्रज के चौरासी कोसों की पैंतालीस दिनों में सम्पन्न होने वाली पैदल यात्रा और उसमें सम्मिलित कहाँ–कहाँ से आये कैसी–कैसी मनोवृतित, और कैसे–कैस लोग अपने–अपने दु:ख चक्रों में फॅसे हुए कैसे अपने ईश्वर को ढूंटते हुए भटक रहे है । वे भी जो ईश्वर को मानते हैं और वे भी जो ईश्वर को नहीं मानते हैं ।

यहाँ ब्रज में कुछ नहीं है । न कृष्ण न राधा, न उनके समय के महल अवशेष ही । सिर्फ जंगल, छोटे मोटे तालाब हैं ....पर इस यात्रा में वे क्या से क्या हो जाते हैं, जमीन का यह टुकड़ा किस प्रकार बदल जाता है । चारों तरफ सात्विकता ही

दिखाई देता है "धीरे समीरे" उपन्यास में ब्रजभाषा में भिन्न–भिन्न मनोवृत्तियों के लिए शामिल हुए हैं, इसका सोचना, अलग–अलग है कोई इस यात्रा में भगवान को ढूँढने आया है, कोई भगवान से अपना कुछ खोया हुआ पाने आया है, कोई मन की शान्ति को कोई शारीरिक रूप से स्वच्छ और नई स्फूर्ति बनाने. जिसे लेखक ने भिन्न–भिन्न पात्रों के माध्यम से बखूबी से प्रस्तुत किया है । धीरे समीरे की मुख्य पात्र सुनन्दा और नन्दन है । इसके साथ–साथ ही सत्येन्द्र, नरेन्द्र, शैलजा, गंगाधर महाराज, राधे, मंजुला, -वेन–रघु, वैष्णवी, जमुना लाल चौबे, रमादीदी, निर्मला और मौसी है ।

सुनन्दा यात्रा में आयी है, यहीं उसे नन्दन नाम का एक ऐसा युवक मिलता है जो बड़े घराने से सम्बन्ध रखता है । जिसकी सफल लेखक बनने की तीव्र अभिलाषा है । लेकिन वह जीवन की जिम्मेदारियों से मुक्त रहकर सिर्फ लेखन करना चाहता है । और वह इसी उद्देश्य से इस यात्रा में सम्मिलित हुआ है । कि किसी बड़े घर की लड़की को फाँस कर उससे शादी करके बिना कुछ किये पूरे अधिकार के साथ सिर्फ लेखन करेगा । इसलिए सुनन्दा को देखकर वह उसकी माँ से सम्पर्क बढ़ाता है और अपना प्रभाव जमाता है किन्तु जब उसे यह पता चलता है कि वह एक साधारण परिवार की प्राइमरी अध्यापिका है, तो उसे बिना बताये उसका पीछा छोड़ देता है, किन्तु वह उसके प्रति भावनात्मक रूप से आकर्षित हो जाता है, अतः बाद में उनके पास जाकर वह सुनन्दा से विवाह कर लेता है । स्वभाव से विवश नन्दन अपने पति के कर्तव्यों से मुँह चुराता है और पूर्णरूपेण पत्नी आश्रित होकर किसी भी प्रकार का संघर्ष किये बिना ही बड़ा लेखक बनना चाहता है, प्रसिद्धि पाना चाहता है । बाद में सुनन्दा और नन्दन में बनती नहीं है, सुनन्दा उसे बार–बार यह अहसास कराती है कि वह काम करते हुए घर की जिम्मेदारियों को देखते हुए भी सफल लेखक बन सकता है, नन्दन को यह पसन्द नहीं आता हे । वह अपने एक बच्चे और सुनन्दा को छोड़कर बिना बताये कहीं चला जाता है । थोड़े दिन बाद सुनन्दा का बच्चा अपहृत हो जाता है तो वह नन्दन पर शक करती है । वह बहुत दुखी होती है, बच्चे का वियोग वह वर्दाश्त नहीं कर पाती है और यह सोचकर कि यात्रा करने से उसका बच्चा मिल

जायेगा, दुवारा यात्रा आती है । वहाँ पर उसकी सत्येन्द्र से भेंट होती है जो उसको गुण्डों से बचाता है वह उसके प्रति कृतज्ञता से भर उठती है । सत्येन्द्र जिसका परिवार का वातावरण कलह पूर्ण है । यात्रा में मानसिक शान्ति और कुछ दिनों का चैन ढूँढने आता है। वह पेशे से वकील है और वह ऐसे जीवन साथी की चाह रखता है । जो बुद्धिजीवी हो, इस लिए वह सुनन्दा के प्रति आकर्षित होता है किन्तु सुनन्दा की तरफ से कोई पहल न देखकर वह निराश हो जाता है । किन्तु फिर भी वह सुनन्दा के विषय में ज्यादा से ज्यादा जानना चाहता है । इसलिए वह अपने प्रयत्नों से वह सुनन्दा के ससुर, बच्चे और पति का पता पा जाता है और उसके ससुर को ब्लैक मेल करने की कोशिश करता है, वह सुनन्दा को 20 हजार रू. में उन्हें सौंपने के लिए भी तैयार हो जाता है किन्तु अन्त में वह सुनन्दा गोविन्द घाट पर पहुँचते हैं । जहाँ एक ब्राह्मण बालक उन्हें बता रहा है कि यह गोविन्द घाट है और ऊपर शमीवृक्ष ....यहीं पर श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन अर्धरात्रि के समय भगवान ने महाप्रभु बल्लभाचार्य को दर्शन दिये थे, इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उसकी मानवीय भावना उदित होती है । और वह पाप करने से बच जाता है । वह सुनन्दा को उससे बच्चे का पता बताकर वापस चला जाता है ।

इस प्रकार वह एक स्वार्थ और लालच से बहुत ऊपर उठ जाता है कुछ देने का कुछ पाने का सुख इसकी भी क्या कोई कीमत हो सकती है, इसके आगे कोई पैसा नहीं ठहर सकता । यह भी धर्म का एक रूप है ।

नरेन्द्र भी यात्रा में आया है उसकी दृष्टि का उद्देश्य सिर्फ शारीरिक रूप से चुस्त और स्फूर्ति पाना है । वह बम्बई में बिल्डर है । मशक्कत की उसे आदत है । उसके अनुसार साल में एक महीने जमकर नियम–संयम से रह कर शरीर को कस लो, फिर पूरी साल शराब पार्टी, खाना पीना, और मौज करना । उसे भगवान में कोई विश्वास नहीं है । वह सत्येन्द्र की यह कहकर पूजा पाठ का मजाक उड़ाता है "ईश्वर दिख गये क्या आपको ? इस प्रकार सत्येन्द्र भी कड़ुवाहट से जबाब देता है । "शहर में यही सिखाता है कि जो गॉव में है पुराना है, सब बेकार है । अगर हम उस सबको शिक्षा के बल पर

खारिज करें तब भी समझ में आता है सही बात यह है कि हम शहरालू अशिक्षित है । उतने ही अनपढ़ जितने में गाँव वाले, जो पूजा पाठ करते दिखते हैं यहाँ । हममें उनमें वरन् इतना फर्म है, कि हमारे पास थोड़ा पैसा है जिसके कारण हमारी ड्रेस थोड़ी झक्क होती है ....या हमें थोड़ी भाषा आती है अंग्रेजी । बस । "तो सभ्यता तरक्की ये कुछ होते ही नहीं क्या ?" होते क्या नहीं । आपके पास है यह सब और देख ही रहे हैं ।" यह एक घमण्ड देता है जो वैसा ही अन्धापन है जो हमें इन लोगों में दिखता है । जैसे यह अपने अज्ञान के बाहर कुछ देखना नहीं चाहते वैसे ही हम भी बाहर कुछ देखना सुनना नहीं चाहते हैं न जानना ....?[1] इस प्रकार सत्येन्द्र के विचारों को सुनकर नरेन्द्र के मन में एक भावना जागती है कि उसने तो मकान बनाने और बेचने के अलावा कुछ सोचा ही नहीं कितना कुछ है दुनिया में समझने के लिए । तभी वैष्णवी का देहावसान हो जाने पर नरेन्द्र रात्रि में उसके पास बैठता है, स्वयं क्रियाकर्म पर खर्च करता है, बेटा बनकर दाह करता है । नरेन्द्र भले ही पूजा पाठ न करता हो, ईश्वर को न मानता हो किन्तु यह किस धर्म से कम है । कि उसके अन्दर एक मानवीय भावना का उदय होता है ।

इसी प्रकार गंगाधर महाराज है जो विधुर है वैराग्य का जीवन बिताते हैं, वे यात्रा में सिर्फ दूसरों की सेवा करने के लिए ही सम्मिलित होते हैं निस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करना ही वे अपना धर्म और अपना सुख मानते हैं । सच्चे सुख की प्राप्ति और जिसकी प्राप्ति के पश्चात् कोई भी इच्छा बाकी न रह जाये ही ईश्वर प्राप्ति है । इसी प्रकार शैलजा जैसी आधुनिका लड़की में भी अपनी संस्कृति के प्रति कुछ जानने की तीव्र आकांक्षा होती है ।

इस प्रकार "धीरे समीरे" उपन्यास के माध्यम से लेखक ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि सिर्फ कर्मकाण्ड धर्म नहीं । सिर्फ अपने मोक्ष के लिए काम करना, मृत्यु

---

1. धीरे समीरे – पृष्ठ 96

उपरान्त आपको अच्छा जन्म मिले । एक स्वर पर तो आप दूसरों पर अत्याचार करते रहे और दूसरे स्तर पर अपने मोक्ष के लिए ....यह स्वार्थ है । धर्म वह है जो आपके पूरे जीवन को अनुप्राणित करे । आपकी संवेदना, सहानुभूति को विस्तृत कर दे, आपको और मानवीय बनाये ....(जैसे नरेन्द्र और सत्येन्द्र के साथ होता है ।)

उससे शक्ति भी मिलती है . उन लोगों को| धीर समीरे उपन्यास में इसी द्वन्द्व से टकराने की कोशिश की है । ये क्या बेकार की चीजें ? कृष्ण और राधा, मन्दिर में घण्टी बज रही है, आरती हो रही है, भक्तजन तन्मय होकर गा रहे । आप भी वहाँ खड़े हो जाते हैं तो आप भी हाथ जोड़ देते हैं । हिन्दू समाज में धर्म आपके इर्द–गिर्द ही रहता है । लेकिन वह आपके जीवन का हिस्सा कब और कैसे और किस स्तर का है यह समझाने और फैलाने का प्रयत्न ही "धीरे समीरे" में किया गया है । इतना तो निश्चित है कि धर्म को हम छोड़ नहीं सकते । ये जीवन को विस्तार देता है । संसार और ब्रह्माण्ड जो है, वह कोई पागल का प्रलाप जैसी कोई चीज नहीं लगता है, उसका कोई खास प्रयोजन है, उसमें एक लय है । मूल्यों से हम भाग नहीं सकते है तभी हम और मूलयों में जैसे झूठ बोलना पाप है, समझते हैं । पूजा पाठ भी जरूरी है यदि वह मानव के इस भाव को दृढ़ करे कि यह जो ब्रह्माण्ड है इतनी बड़ी जो कृति है, कोई कृतिकार है इसका । इस बड़ी कृति से हमारा भी कोई रिश्ता है यह प्रतीति स्फुर्ति देती है कि हम अलग–अलग नहीं जुड़े हुए हैं इस ब्रह्माण्ड से लेकिन यदि धर्म मानवता से अधिक है तो वह धर्म नहीं ढ़ोग है । अगर हम पूजा पाठ करते हैं जो हमारे अन्दर करूणा इतनी बढ़ जानी चाहिये कि हम सबके प्रति दयावान हो जायें नहीं तो बेकार । यदि धर्म हमें संकुचित बनाये, संकीर्ण बनाये तो वह धर्म नहीं है । धर्म निश्चित ही बहुत उदार बहुत विस्तृत बड़ा बनाता है । लेकिन इस धर्म के पक्ष में है, और मानव में इस भावना को जाग्रत करने का प्रयास ही "धीर समीरे" में है । और आधुनिकतावाद के इस युग में अपनी परम्परा की पुनः पहचान, पड़ताल और उसके सत्व की खोज कराना है ।

चरित्र :

चरित्रांकन उपन्यास विधा का प्रधान तत्व है । जीवन का मनोविज्ञान कहता है कि महत्वाकांक्षा से प्रेरित व्यक्ति सक्रिय होता है और सफलता प्राप्त करता है । साहित्य शास्त्रीय दृष्टिकोण है कि जो भी नायक या नायिका हो वह ऐसा पात्र होना चाहिए जो लोक (समाज) को प्रभावित कर सके । यह भी सत्य है कि प्रत्येक कृति का पात्र (नायक) राम या कृष्ण या दुष्यन्त नहीं हो सकता, नारी सीता, द्रोपदी या शकुन्तला नहीं हो सकती । आज के युग में यद्यपि समर्थ लेखक प्रयास करता है कि उसकी रचना के पात्र समाज को प्रभावित करने वाले हों, लोक का मार्ग–दर्शन कर सके, किन्तु यदि यथार्थता का चित्रण किया जाय तो पात्रों की चरित्रगत समस्या उभरकर सामने आती है । सम् 1960 के बाद के अधिकांश उपन्यास समयानुकूल विषयों को अपने में समेट लेते हैं । सेवा, हिंसा, विद्रोह, इतिहास–उपेक्षा, आत्म–हत्या और संत्रास के मध्य अधिकांश उपन्यास यथार्थ धरातल पर मनुष्य के आन्तरिक संकट को पहचानने से चूकते रहे हैं । परिणामतः आज का उपन्यासकार, व्याख्याकार, सलाहकार, व्यंग्यकार, जीवनीकार, नाटककार – सभी भूमिकाएँ निभाता है, पाठक से जीवंत लोगों का साक्षात्कार करवाता है । इन जीवन्त लोगों में सम्बन्धों की चतुराई है, दिमागदारी है, अतः शोषण, अन्याय, सेक्स के चित्रों में उपन्यास प्रेम, मित्रता, समानता से सही रंग नहीं भर सकता । मिश्र जी इस संकट से बच नहीं पाये हैं, किन्तु सोच में या संवेदना के विस्तार में हमें एक प्रकार की निरन्तरता का आभास होता है, क्योंकि वे हर मूल्य की परख, व्यक्ति–परिवेश, आस्था–अनास्था और तर्क–भाव की कसौटी पर करना चाहते हैं ।

वह/अपना चेहरा में चरित्र विश्लेषण :

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भारतीयों को जिन मोह भंग की स्थितियों का, उखड़े उजड़े परिवेशों का, मूल्यहीन मानसिकता का सामना करना पड़ा, जीता जागता दर्पण

गोविन्द मिश्र का उपन्यास – वह/अपना चेहरा । इस दर्पण में मिश्रजी ने न केवल कुछ चुने हुए पात्रों का चेहरा प्रतिबिम्बित किया है, अपितु उन अनेक पात्रों के चेहरे का प्रतीकात्मक रूप प्रदान किया है, जो सामान्य व्यक्ति आज अपने अधिकारों की रक्षा करते–करते स्वयं जाने–अनजाने में विवशता का शिकार बन जाने को बाध्य हो जाते हैं । नीतिगत मूल्यों के रक्षक होने का दावा करने वाले जो लोग प्रतिशोध की ज्वाला की लपेट में स्वयं नीति मूल्यों की दहलीज चाहे – अनचाहे – लाँघने को प्रस्तुत हो जाते हैं, उन अनेक व्यक्तियों की मानसिकता को मिश्र जी ने अपने इस उपन्यास में चित्रित किया है । वह/अपना चेहरा उपन्यास की कथावस्तु प्रतीकात्मक रूप में भारत के हर नगर–महानगर की भीड़ और ग्राम्य–जीवन में अपने अस्तित्व की तलाश करने वाले और उसे सुरक्षित रखने में जुटे हुए सामान्य भारतीय मानस की कहानी है । पात्रों के चरित्रांकन का इस तरह कलात्मक रूप से साधारणीकरण करने में लेखक ने निःसंशय ही सफलता प्राप्त की है ।

"वह/अपना चेहरा" उपन्यास में प्रमुख चरित्र है – नायक – शुक्ला, जो सरकारी अफसर है, केशव दास भी सीनियर अधिकारी है, स्त्री पात्रों में मुख्य हैं – मिसेज रचना आजवानी और रेशमा ।

"वह/अपना चेहरा" – उपन्यास सरकारी अधिकारियों – अफसरों की आपसी कशमकश छीना झपटी और खींचतान का चेहरा है ।

शुक्ला –

नवयुवक शुक्ला एक छोटा (जूनियर) सरकारी अधिकारी है, वह स्वभाव से दब्बू और ढीला है । वह अपने ही विभाग के बड़े अधिकारी (सीनियर अफसर) केशवदास के समक्ष स्वयं को बड़ा हीन और लाचार अनुभव करता है । उसके व्यक्तित्व में अन्तर्विरोध झलकता है, छटपटाहट और खीच दिखाई देती है तथा नपुंसक अक्रोश की कहानी है । शुक्ला अपने अधिकारी द्वारा अनुचित रुप से मिस आजवानी (रचना) को प्रोन्नत किए जाने पर स्वयं को अपमानित महसूस करता है और अपमान का बदलने के लिए वह केशव दास से कुछ ईर्ष्या करता है । यही कारण है कि वह उसकी लड़की रेशमा से सम्पर्क

स्थापित कर लेता है – "कम्बख्त जानेगा तो कि घुलना क्या होता है ?" वह रेशमा को देर तक रेस्तरां में रोक रखता है ।" फिर एक और तो मुझे मजा आ रहा था इस ख्याल में ही कि केशव दास थोड़ा बहुत ही सही, परेशान ही होगा ।"[1]

एक बार एक दिन जब वह आजवानी को अपने एक दोस्त के अकेले कमरे में जाने में ले जाने में सफल तो हो जाता है, किन्तु वह अर्ध बलात्कार अर्थात् चुम्बन और उसका आलिंगन करने के अतिरिक्ति कुछ नहीं कर पाता है । फलतः वह कुछ "टूटा–सा महसूस" करता है और अपने कृत्य पर कुछ "हल्का–सा पश्चाताप" भी करता है –

"हवा के एक अवारा बगुले की तरह सब कुछ उड़ गया था, एक क्षण के तीखेपन में ....शायद सभी कुछ आया था, क्योंकि सब कुछ आधा ही रहा था, वह सब भी जो मैं इतने दिनों से झेलता चला आ रहा था ।[2]

उपन्यास का दूसरा पुरूष पात्र है केशव दास । वह एक सीनियर सरकारी अफसर (उच्च अधिकारी) है । वह वृद्ध है और प्रायः अस्वस्थ और बीमार रहता है । यद्यपि अपने आपमें वह एक वजनदार (प्रभावशाली) व्यक्तित्व है, तथापि विभागीय कार्यो के निर्वाह में कुछ शिथिल अधिकारी है । केशव दास के चरित्र की एक बड़ी कमी है कि रचना आजवानी के साथ उसके अवांछनीय सम्बन्ध है, इसी कारण वह नायक शुक्ला की उपेक्षा करके मिस रचना को अनावश्क और अनुचित रूप से प्रोन्नति देता चला जाता है । इसी वजह से शुकला और केशव दास के मध्य तनाव, ईर्ष्या और वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है ।

स्त्री पात्रों में मुख्य है रचना आजवानी और रेशमा । रचना आजवानी विवाहित महिला है और केशव दास के कार्यालय में ही सेवारत है तथा केशव दास से उसके अवांछनीय

मुझे घर ले चलो - ले गो मिश्र

1. वह/अपना चेहरा पृष्ठ – 42
2. वही पृष्ठ – 46

सम्बन्ध हैं, यह उसके चरित्र पर एक लांछन है । अपनी इस चारित्रिक दुर्बलता का लाभ वह अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में उठाना चाहती है । अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वह अपने अधिकारियों को हर प्रकार से खुश रखने हेतु तत्पर दिखाई देती है ।

मिस रचना आजवानी :

विवाहित महिला है और केशव दास के कार्यालय में ही सेवारत है । केशव दास जो कि उनका सीनियर अफसर है, के साथ उनके अवांछनीय सम्बन्ध है, यह उनके चरित्र पर एक लांछन है । अपनी इस चारित्रिक दुर्बलता का लाभ वह अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वे अपने अधिकारियों को हर प्रकार से खुश रखने हेतु तत्पर दिखाई देती है । मिस रचना सारे उपन्यास में मात्र तीन बार और वह भी थोड़ी–थोड़ी देर के लिए आती है किन्तु अपने पति और केशवदास के विषय में संक्षिप्त बातचीत, अमरू के कमरे में शुक्ला से अलग–अलग सन्दर्भ की बातें ही उसके व्यक्तित्व को पूरी तरह उभार कर रख देती है ।

रेशमा :

केशव दास की पुत्री है । नायक शुकला अपने अधिकारी केशव दास से बदला लेने की भावना से उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, उसकी सहायता भी करता है और उसके साथ फ्लर्ट भी करता है । उसे काफी देर तक जलपान गृह (रेस्तरों) में रोके रखता है । यही नहीं वह (रेशमा) शुक्ला के साथ शहर के बाहर एक सुनसान फार्म पर भी जाती है ।

उतरती हुई धूप के पात्र :

गोविन्द मिश्र कृत "उतरती हुई धूप" उपन्यास के प्रमुख पात्र "अरविन्द" और "वह" हैं । भाई साहब एक गौण पात्र के रूप में सामने आये हैं ।

अरविन्द्र :

उपन्यास का नायक और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एम.ए. कक्षा का छात्र है । छात्रावास में रहकर शिक्षा प्राप्त कर रहा है । वह एक सामान्य परिवार का लड़का है, इसके साथ ही एक सच्चा एवं भावुक प्रेमी भी है अपनी ही कक्षा की एक वीमेन्स हास्टल की लड़की से अटूट प्रेम करता है किन्तु इस लड़की का विवाह अन्यत्र हो जाता है । दस वर्ष के उपरान्त पुनः नायक की मुलाकात "वह" के साथ होती है तो नायक "वह" से पुनः पहले जैसे अंतरंग सम्बन्धों की माँग करता है किन्तु नायिका अपने वैवाहिक जीवन के सामाजिक मूल्यों की व्याख्या करती हुई नकार देती है और नायक को अपनी ही निगाहों में ओछा और निरीह सिद्ध कर देती है ।

समीक्षक से. रा. यात्री के शब्दों में —– "पहले हिस्से में नायक सन्तुलित आत्म केन्द्रित और किंचित जटिल मालुम पड़ता है ....10 वर्ष बाद ....अपनी समर्पिता प्रेमिका को पत्नी के रुप में पाकर नायक अत्यनत निरीह और छोटा बन जाता है ।" [1]

इस प्रकार अरविन्द्र के चरित्र की मुख्य विशेषताऐं इस प्रकार व्यक्त की जा सकती हैं – भावुक, सच्चा प्रेमी शिक्षित सन्तुलित व्यवहार आत्मकेन्द्रित, स्पष्टवादी , निर्राह और औछी मानसिकता वाले प्रेमी के रूप में सामने आता है ।

"वह" (लड़की) :

लेखक ने उपन्यास में नायिका का नाम नहीं दिया है वस "वह" का संकेत किया है । "वह" लड़की वीमेन्स हास्टल में रहती है एम.ए. की छात्रा है । अरविन्द की प्रेमिका है और अरविन्द के प्रति पूर्ण समर्पित है । किन्तु माँ बाप को कष्ट न हो इसलिए उनकी इच्छानुसार विवाह कर लेती है ।

सृजन के आयाम – सं० चन्द्रकांत बांदिवडेकर

1. उतरती हुई धूप – पृष्ठ 82

नायिका खूबसूरत युवती के रूप में सामने आती है "उसके शरीर की हर लकीर गहरेपन से उभर रही थी ....बड़ी–बड़ी आँखे खूबसूरत नाक और उसके नीचे के होठों की साफ सुथरी लकीरे ....होंठ कितने एक से – और सुडौल थे ।"[1]

विवाहोपरान्त नायिका अपने सामाजिक मर्यादा और मूल्यों का पूरी वफादारी से निर्वाह करती है और 10 वर्ष पश्चात् नायक के अनुरोध पर पूर्व सम्बन्धों को पुनः जीवित करने को दृढ़ता के साथ मना कर देती है जो कि भारतीय परम्परा और पति के प्रति निष्ठता को सद्धि करता है । स्वावलम्बन के लिए पुनः पढ़ाई शुरू करती है और पी–एच.डी करने लगती है । नायिका का चरित्र **से. रा. यात्री के शब्दों में** –– "लड़की बेहद भावुक, कमजोर और स्वत्व समर्पित लगती है ....किन्तु 10 वर्ष का दाम्पत्य जीवन से एकदम सर्द बना देता है ।"[2]

भाई साहब :

उपन्यास का तीसरा पात्र हैं जो कि यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में सेक्रेटरी है और एक अच्छे टाइपिस्ट भी हैं । वे नायिका की पी–एच.डी. में सहायता करते हैं । वे बड़े ही भावुक और सहृदय व्यक्ति हैं इसीलिए नायिका की भरपूर मद्द करते हैं ।

लाल पीली जमीन के पात्र :

गोविन्द मिश्र कृत "लाल–पीली जमीन" उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं, केशव, कल्लू, शिव मंगल, सुरेश, शिवराम और कैलाश नारायण और मास्टर कौशल । किन्तु प्रमुखता से केशव नायक के रूप में उभर कर आया है । स्त्री–पात्रों में प्रधान चरित्र है – उमा, छवि, शान्ति, शैलजा और मालती आदि । स्त्री–जीवन की भयानक नियति इन्हीं के माध्यम से इतनी शक्ति पूर्ण ढ़ंग से व्यंजित की गई है कि अन्तर्मुखी होकर विचार करने वाला पुरूष अपने पुरूष होने को कोसता रहे ।

---

1. उतरती हुई धूप – पृष्ठ – 12
2. सृजन के आयाम – पृष्ठ – 82

चारित्रिक समस्या पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. चन्द्र कान्त वांदिवडेकर ने संकेत किया है - "लाल-पीली जमीन" में पैदा हुआ हर व्यक्ति उखड़ने के लिए, गिरने के पहले जीवन के रूप में खड़खड़ाहट करने की विवशता के लिए ही पैदा हुआ है । असहाय, यन्त्रगामय, करूण कराहें समस्त उपन्यास में व्याप्त हैं – शक्ति और अतयाचार करने की सामर्थ्य को बोध देने वाले व्यक्ति भी कहीं भीतर में अवश्य पीड़ा के ही प्रस्फुअन हैं ।[1]

केशव :

मिश्र जी ने केशव को विलक्षण और तीव्र संवेदन शील चरित्र के रूप में चित्रित किया है । केशव विवशता का शिकार है इसीलिए वह अनचाहे और असमय में ही वयस्क होता जा रहा है । जो जिस आयु – अवस्था (उम्र) में नहीं देखना – भोगना चाहिए, उसे देख – भोगकर या उसे देखने – भोगने के लिए विवश किया जाकर असमय में ही प्रौढ़ होता जा रहा है । अपने जीवन – क्रय का उल्लास और आनन्द न लेकर बूढ़ा होने के लिए विवश किया जा रहा हे । परिस्थिति वश भावुक होने वाला केशव भावुक भी नहीं हो पाता ।

केशव अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील, समझदार और सहानुभूति शील है, इसीलिए शिवमंगल के अनाथ पुत्र सोहन के प्रति सहानुभूति अनुभव करता है ।

केशव की युवावस्था की प्रेयसी है उमा । दोनों के प्रेम सम्बन्धों का मिश्र ने विस्तृत उल्लेख नहीं किया है । किन्तु उसका विवाह किसी अन्य लड़की के साथ कर दिया जाता है । भावनात्मक दृष्टि से वह विट्टी, मालती और छवि की ओर भी आकर्षित होता है ।

दूसरी ओर केशव कमजोर पिता का कमजोर पुत्र भी है । उसका न कोई मित्र है, न कोई समझने वाला, न घर में न बाहर, न पड़ोस में । वह सतत् अपमान और विवशता के बोध, आत्मग्लानि की निरन्तर कचोट, शारीरिक और मानसिक यातनाओं का प्रतीक भी है ।

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम – पृष्ठ 93.

कल्लू :

सुरेश, शिवराम, शिवमंगल वगैरह जो कुछ कर रहे हैं, वह भी गहरे धरातल पर अपने छोटे होने का ही बदला ले रहे हैं, वह भी परिवार पर या दूसरों पर अत्याचार करके । कल्लू मास्टर कौशल की पुत्री शैलजा को भगा ले जाता है ।

पण्डित :

पण्डित का घृणित पाप कर्म पानी के बुद बुदे की भाँति ही उस मिट्टी में अनदेखा मिल जाता है, कोई निशानी नहीं बचती है ।

सुरेश :

सुरेश नामक व्यक्ति आतंकवादी था – "वह जो चाहता था बन गया – छोटे शरीर का एक बड़ा बादशाह । (पृष्ठ 274) "युवा उग्रवाद के नकारवाद के कारण समाज में ही होंगे, सुरेश के अमानवीय क्रूर आतंकवाद के पीछे उसका "अतीत" था – "अपमानों से भरा हुआ अतीत" ।

इस उपन्यास में नारी का चित्र तो शोषिता का ही है । मालती जैसी नारी नंगई – गुंडई और पथ भ्रष्ट परविश की शिकार होकर उससे मुक्त होना चाहती है, परन्तु पूर्णतया टूट जाने पर यह सम्भव नहीं था । नारी लौकिक धरातल पर सब कुछ प्राप्त करना चाहती है, परन्तु निर्णय की स्वतन्त्रता मिलने पर भी वह उस स्वतन्त्रता से दु:ख को काटने के लिए साहस नहीं जुटा पाती । मालती भागकर ब्याह करने की भूल को आठ दिनों में ही समझ लेती है और माँ के घर लौट आती है ।

"लाल पीली जमीन" उपन्यास ही चरित्रगत समस्या को स्पष्ट करते हुए डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने लिखा है – "दूसरी ओर साड़ों की भिड़न्त के कौतुक – चित्र से मानव

पशुता का व्यंग्य उभरता है जिसमें चरित्र इकाइयों की पहचान धुँधुली पड़ जाती है – संज्ञाएँ, व्यक्तित्व धुमैली परछाइयों में खो जाते हैं । शिवमंगल, कल्लू, कैलाश, शिवराम कल्लन, बड़े नारायण पण्डित, बोस, मास्टर कंठी, शैलजा बिट्टी, छवि, शन्नो मौसी, शान्ती, मालती अन्त तक पहुँचते – पहुँचते तमाम आकृतियाँ गड्ड मड्ड हो जाती है । सबके ऊपर ढंगा रहता है एक युग या वर्ग का हिंसक स्वभाव जो गुणों को गुणों के लिए सौन्दर्य को सौन्दर्य के लिए, अभाव को अभाव के लिए व्यथा को व्यथा के लिए लांछित करता है ।[1]

"हुजूर दरबार" से :

गोविन्द मिश्र के इस उपन्यास "हुजूर दरबार" में निम्नलिखित प्रकार के चरित्रगत समस्या को प्रस्तुत किया जा सकता है । प्रथमतया इस उपन्यास में दो वर्ग हैं –

1. राज दरबारी वर्ग, जो जी–हुजूरी करना चाहता है और
2. जी–हुजूरी वर्ग, जो जी–हुजूरी करता रहता है ।

प्रथम वर्ग में आते हैं, महाराजा रूद्र प्रताप सिंह, महारानी साहिबा, छोटे लाल दीवान, दीवान पुत्र बख्तावर सिंह, सिर्री राजा जुझारू सिंह । ये सब हुजूर संस्कृति के सदस्य हैं । द्वितीय वर्ग में रखे जा सकते हैं – हरीश, उसके बापू, माँ, उमा – यह सारा हुजूर वर्ग के सुख के लिए उत्पन्न हुआ जी–हुजूरी वर्ग है ।

द्वितीय दृष्टिकोण वही प्राचीन दृष्टिकोण है जिसमें पुरूष पात्र और स्त्री पात्रों का पृथक – पृथक चरित्रांकन किया जाता है । इस प्रकार इस दृष्टि से प्रमुख – पुरूष पात्र है – हरीश, राजा रूद्र प्रताप सिंह, नेता जी खरे साहब, हरीश के पिताजी, छोटे लाल दीवान, सिर्री राजा बख्तावर सिंह, जुझारू सिंह आदि । और प्रमुख स्त्री पात्र हैं – नेपाल सरकार (नेपाल कन्या), महारानी साहिबा, राधाबाई , उमा हरीश की माँ ।

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम " पृष्ठ 105

स॰ चन्द्रकान्त

मुख्यतः इस उपन्यास में हरीश और रूद्र पताप सिंह दोनों पर ही अधिकाधिक प्रकाश डाला गया है और फिर भी छोटे–बड़े सभी व्यक्तियों के मन की तहें खोजकर छोटे–छोटे प्रसंगों में से उनको सहज ही व्यक्त करने की कोशिश की गई है । यदि समग्र रूप से देखा जाय तो अलग–अलग स्वभाव वाले पात्रों के साथ गोविन्द मिश्र की एकाकार होने की कलाशक्ति बड़ी ही प्रभावशाली है ।

हरीश :

हरीश का जीवन – संघर्ष एवं उसका सुख–दुःख जिस प्रकार उसके माता–पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के साथ घनिष्ठता से सम्बद्ध है, उसी प्रकार उसके जीवन की महतवपूर्ण घटनाएँ तथा उसकी कुल नियति रियासत के साथ सम्बद्ध है । यह उपन्यास ही हरीश के युवा–व्यक्तित्व के विघटन की शोकपूर्ण और शोकान्त कथा है । हरीश महत्वाकांक्षी व्यक्ति भी है, इसी लिए वह पटना से एम.ए. करने के बाद अमेरिका जाना चाहता है, किन्तु नेपाल सरकार द्वारा हिन्दी शिक्षण हेतु आमन्त्रित किए जाने पर सहर्ष वहाँ जाने को तैयार हो जाता है ।

हरीश की नियति स्थिति और पराजय का परिवेश है । उसके शोषण का उद्‌गम, उसके अनिवार्य संरक्षण का अर्थ वहाँ अपनी इच्छा – आकांक्षा की दिशा में पनपना न होकर राज दरबार के उपभोग का हथियार बन जाने के सन्दर्भ में दिया जाता है । उपन्यास में हरीश का परिचय प्रारम्भ से ही खण्डित, पीड़ित और दयनीय प्राणी के रूप में होता है । हरीश के पिता तटस्थ एवं परम्परापोषी हैं । माता और उमा नाम्वी प्रेमिका से अलगाव उसे राजमहल से जुड़ाव के कारण मिला है । राज महल से उसका जुड़ाव संस्थापक है, व्यक्तिपरक नहीं है ।

नेपाल सरकार (कन्या) द्वारा हरीश को अपनी वासना का साधन बनाये जाने पर उसके मन पर तीव्र वेदना उत्पन्न होती है और वह मानसिक रूप से प्रभावित भी होता है ।

हरीश मेधावी और व्यस्त व्यक्ति है, इसीलिए हरीश, अपने किसी प्रोजेक्ट में व्यस्त रहता है, क्योंकि वह अपना शेष जीवन सुखमय और शान्तिपूर्वक काटना चाहता है। इसी कारण वह एम.ए. उत्तीर्ण करने के उपरान्त अमेरिका जाने की तैयारी करता है, किन्तु सत्तारूढ़ अधिकारी उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखते हैं कि उस जैसे बुद्धिमान व्यक्ति को विदेश न जाकर देश में ही कार्य करना चाहिए।

गोविन्द मिश्र ने हरीश को एक अनाथ, असहाय और दीन-हीन व्यक्ति का प्रतीक माना है जो राजाशाही और अफसर शाही शक्ति के समक्ष अर अराकर टूट जाता है। उस के मन का समूचा आधार ही उखड़ जाता है। इस प्रकार हरीश एक संत्रस्त पुरूष पात्र और चरित्र है।

उपन्यास में हरीश की संवेदना प्रधान है। आरम्भ में ही लिखा है – "तुम्हारे सिर में हम आग लगायेंगे और उसे माथे पर जलाये रखेंगे। * * * तुम साले जाओगे कहाँ? हम तो तुम्हारे सेवक हैं – तुम्हें चूसेंगे। तुम्हारी हड्डियों को चचोरेंगे और फिर तुम्हें घूरे पर फेंक देंगे। ....[1]

राजा रूद्र प्रताप सिंह :

ये एक रियासत के महाराजा हैं। हिज हाइनेस रूद्र प्रताप सिंह टिपिकल राजा के चरित्र से अधिक मानव – संवेदन संयुक्त हैं, अधिक लचीले, भीतरी विवेक के सहारे समय की मुख्य धारा में राजा की सत्ता लिप्त केचुल को बाहर रख आने में असमर्थ है। उनके भीतर राजा बनकर नहीं अपने निजी व्यक्तित्व के वजन में होने की माँग है। प्रजा के प्रति उनका रवैया स्नेह पूर्ण और न्याय-प्रियता का है।

मिश्र ने राजा रूद्र प्रताप सिंह को भारतीय रियासतों का प्रतीक बनाकर अपने उपन्यास में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है और उनके बहु-आयामी व्यक्तित्व को

---

1. हुजूर दरबार – पृष्ठ 1.

विशदता के साथ खड़ा किया है । राजा रूद्र प्रताप सिंह मूलतः सदाशयी एवं सद्–व्यवहारी हैं और लोक कल्याण का आदर्श सामने रखकर अपनी सत्ता चलाना चाहते हैं । इसके बावजूद भी राजा की कुछ परम्परायें उनके रक्त में रचपच गयी हैं, इसीलिए उसके आदर्श पर कुछ सीमायें भी उत्पन्न हो गयी हैं ।

राजा को स्त्री–देह के भोग की आदत पड़ चुकी है, इसीलिए दो–दो पत्नियों के रहते हुए भी व्यस्क अवस्था में वह नेपाल राजधानी की सुन्दरी और तरूणी कन्या से विवाह करने में संकोच नहीं करते । इसके अलावा पारिवारिक राजशाही की लम्पटता खून में प्रवाहित होने के कारण जिस स्त्री पर मन आ जाये, उसे प्राप्त करके और कुछ दिन समीप रखकर फिर भूल जाना एवं राजघराने की अन्य दासियों के साथ सम्बन्ध रखना उनकी आदत है । किन्तु इसमें भी एक आदर्श यह है कि इन सम्बन्धों में कही भी बलात्कार या हिंसता नहीं है । उनके जीवन में जिन दो स्त्रियों ने उन्हें प्रभावित किया है वे हैं 1. नेपाल की राजकन्या और 2. राधा नाम की युवती ।

रूद्र प्रताप के रक्त में रईसी का रूआब और बड़प्पन का प्रदर्शन करने की भी प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । इसी कारण वे जनता से अनेक प्रसंगों से भेंट – उपहार भी प्राप्त करते हैं । शराब और शिकार के प्रति भी उनकी आसक्ति कम नहीं है । आलीशान इमारतें, भव्य – भवन और बाग – बगीचे, विस्तीर्ण तालाब, सुन्दर मार्ग, क्रीड़ॉंगन बनाने का उनका शौक भी परम्परागत है । अतिथियों का भव्य स्वागत करना और प्रजावर्ग से धन संग्रह करना उनकी परम्परा है । दशहरे के दिन हाथी और सांटेमारों का खेल पारिवारिक एवं परम्परागत शौक है ।

राजा साहब की न्याय – व्यवस्था अपेक्षाकृत निर्दोष है । जनता के साथ उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण और उनकी शिकायतें स्वयं सुनने के कारण अधिकारी वर्ग जनता पर मुश्किल से वही अन्याय कर पाते हैं । न्याय देने में देर भी नहीं होती । अन्न छत्र (अन्न भण्डार) थे, मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती थीं । मन्दिरों की व्यवस्था भी अच्छी थी, मठ था । कुल राजा के लोग कल्याणकारी स्वभाव को लेकर प्रजावर्ग में सन्तोष था और राजा को पारिवारिक आदतों के प्रति सहिष्णुता थी ।

हाँ, राजा के मन में बाह्य दबाव को लेकर भय भी व्याप्त था, तो कहीं खानदानी राजाशाही के शील को लेकर शंका भी थी । प्रजा मण्डल के साथ उसे समझौता भी करना पड़ता है ।

गोविन्द मिश्र ने रूद्र प्रताप को न दुर्गुणों का विग्रह ही बनाया है और न ही सद्गुणों का पुतला । राजाशाही की परम्परा से घृणा करते हुए भी पाठक के मन में राजा के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती देखी जाती है । एक उदाहरण प्रस्तुत है – प्रजा में बेहद प्रिय, रियासत में नये–नये प्रयोग करने के हमेशा इच्छुक, हर चीज में दत्तचित्त ....फिर भी महाराज का मन नहीं लगता था । सामने जो कुछ हो रहा था, उसमें एक दम एक रस दीखते थे, लेकिन अन्दर ही अन्दर न जाने कहाँ भटकते होते । उन्हें पूरी तरह कुछ न डुबो पाता – न शराब, न दरबार, न औरत ! अन्दर एक घबराहट–सी बराबर चलती है ....कोई आशंका जिसे वे साफ–साफ कभी न देख पाते ।"[1]

<u>नेपाल की राज कन्या (नेपाल सरकार)</u> :

यह पात्र "हुजूर – दरबार" का एक शक्तिशाली पात्र है । नेपाल के राजा की कन्या होने के कारण उन्हें नेपाल सरकार कह कर ही पुकारा गया है । राज महल में उसका जीवन अन्य रानियों से अलग रहा है । वैभव – विलास की दुनियाँ में रहते हुए भी, वह मानसिक रूप से राज महल के बाहर के जीवन से भी परिचय प्राप्त करती रही है । उसका लक्षमण बाग भी अलग रहा है । वहाँ रहकर वह सदैव इस बात के लिए पहले से ही तैयार रहती है कि राजभवन के बाहर किस प्रकार रहा जा सकता है । उसे दो बातें स्पष्ट रूप से ज्ञात थीं – प्रथम तो यह कि महाराजा अधिक दिन तक जीवित नहीं रहेंगे और द्वितीय यह कि भारत स्वतन्त्र होते ही रियासत भी नहीं रहेगी एवं राज भवन का वैभव भी नहीं बचा रह

---

1. हुजूर दरबार – पृष्ठ 142

सकेगा । इन दोनों ही स्थितियों का सामना करने की तैयार वह पहले से ही करती रही हैं। हुजूर – दरबार के तौर – तरीकों से वह पूरी तरह अभ्यस्त हो गयी थीं । हरीश ने शब्दों में नेपाल सरकार का व्यक्तित्व देखिये –

"बहुत ही भटकने वाला व्यक्तित्व थां उनका – हरदम छटपटाता हुआ, किसी एक चीज पर ठहरना नामुमकिन । वे स्वप्न जिन चीजों का देखा करती थीं, चाहती बिल्कुल उलटा थी । एक दम साधारण महिला का जीवन बिताने की बात घूम फिर कर कई बार करती थीं, जबकि दर असल रानीपन उनमें बे इन्तहा था और उसी के लिए कोशिश भी थी । ....यही था जो वह चाहती थी – एक साधारण नागरिक की तरह रहना ।"[1]

महाराज की मृत्यु के पश्चात् नेपाल सरकार ने राजनीति में रूचि लेना आरम्भ कर दिया और उसने नये युग का कलम कुर्सी का दरबार अपने लिये तैयार कर लिया ।

अन्य पात्रों का चारित्रिक परिचय :

राधाबाई :

यद्यपि एक साधारण लड़की है, किन्तु उसका सौन्दर्य अत्याकर्षक है इसी लिए राजा रूद्र प्रताप सिंह उसे देखकर उस पर अनुरक्त हो जाते हैं और उसे प्राप्त (विवाह) कर लेते हैं । बाद में वह एक रखैल का जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो जाती है । वह अन्य रानियों में अच्छा स्थान प्राप्त कर लेती है, इसी कारण दीवान छोटे लाल राजा के कान भरकर उसे राजा से अलग कर देता है, बाद में उसका सर्वस्व लूटकर उसकी हत्या भी करा देता है । राधाबाई एक रखैल होते हुए भी विशिष्ट जीवन जीना चाहती है । उसमें मानवीय गरिमा और प्रतिष्ठा को चाह सकने का लक्षण भी है ।

---

1. हुजूर दरबार – पृष्ठ – 166.

उमा :

परिवेश के नाम पर एक रसोइये की बेटी होने के बावजूद भी उमा में मीडियाकर बने रहने के प्रति तीखा इन्तकार भाव है, वह विवेक वती, और बौद्धिक जिज्ञासा से परिपूर्ण ही नहीं, इस किशोरावस्था में भी माँ हो चली थी ।" उसकी मुद्रा में एक विशेष प्रभाव का चुनाव धर्मी नैतिक बल है । माँ के मौन में ताउम्र साथ चलने वाली एक अघुलनशील दृढ़ता भी है ।

खरे साहब :

नर्मदा प्रसाद खरे का चरित्र एक महत्वपूर्ण चरित्र है । प्रजा मण्डल का नेतृत्व करने वाले खरे एक ईमानदार जन – नेता हैं । खरे जैसे जन – सेवक का भी व्यक्तित्व शोकांतक है एवं संघर्ष बहु – आयामी है । उसकी एक लड़ाई रियासत की राजवट के साथ दूसरी लड़ाई मूल्य भ्रष्ट होते जाने वाले राजनीतिक सहयोगियों के साथ है । खरे साहब जानते हैं कि रियासत के साथ चल रहे आन्दोलन में रूद्र प्रताप का मन जनता को न्याय देने वाले लाभप्रद राजकर्ता का है किन्तु यह बात खरे के सहयोगियों के लिए उनके स्वार्थ में साधन जैसी बनती है । लोकप्रिय होते जाने वाले खरे को वे रूद्र प्रताप का घटक मानकर अफवाहें फैलाते हैं । इस प्रकार अपने ही सहयोगियों के साथ संघर्ष की स्थिति में खरे को बहुत ही यातानाएं होती हैं । स्वार्थ में अन्धे बने षड्यन्त्रकारियों के हाथ से मारे जाने की जो प्रेषित की नियति होती है वह खरे की भी हुई । अज्ञात रूप से उनकी हत्या भी कर दी जाती है ।

स्वातन्त्र पूर्व कालों में जो लोक सेवा करने वाले तथा निःस्वार्थ एवं त्यागमय व्रत धारण करने वाले सच्चे देश भक्त थे, उन्हीं का प्रतीक रूप थे खरे । खरे साहब महात्मा

HANSA MEHTA LIBRARY
University of Baroda

गाँधी की भाँति आत्मान्वेषण करने वाले तथा अपने मन की प्रेरणाओं को टोहकर सत्ताकांक्षी की जड़े उखाड़ने के लिए सदैव सिद्ध रहने वाले नेता थे । इसीलिए जब स्वतन्त्रता के द्वार पर पहुँचे और सत्ता प्राप्त करने का अवसर आया तो उन्हें एक ओर हटना पड़ा, अन्त में उन्हें प्रजा मण्डल से ही त्याग पत्र देना पड़ा ।

दीवान छोटे लाल :

यह राजा रूद्र प्रताप सिंह का बड़ा ही धूर्त, बदमाश और षंड्यन्त्रकारी दीवान है । वह विलक्षण स्वार्थी भी है । एक ओर तो रूद्र प्रताप के हित सम्बन्धों की चिन्ता करके काल अभिनय करने वाला आदमी अंग्रेजों के एजेन्ट के साथ भी मिला हुआ था । राधाबाई को देखते ही दुष्टतापूर्वक राजा के कान भर कर उसे राजा से अलग कर रखैल बना देता है । बाद में उसकी धन – सम्पत्ति लूटकर उसकी हत्या भी करा देता है । प्रजा मण्डल के मन्त्रियों और नेताओं को भी भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी की आदत डाल देता है ।

बख्तावर सिंह :

इसी रियासत के पूर्व दीवान का पुत्र बख्तावर सिंह भी ऐसा ही एक विलक्षण स्वार्थी और षड्यन्त्रकारी धूर्त व्यक्तित्व है । यह धूर्त व्यापारी रूद्र प्रताप सिंह के जमाने में जी हुजूरी करता है, लेकिन प्रजा मण्डल के सत्ता में आने पर सत्ताधारी मन्त्रियों के गले में पुष्पमाला डालकर उनका स्वागत करता है और रियासत के विरूद्ध कटु भाषण करने के लिए भी तैयार हो जाता है । यही व्यक्ति आगे चलकर नेपाल सरकार की मिल खरीदकर चलाता है । इस प्रकार राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद जिन स्वार्थी लोगों ने उससे प्रचुर अनुचित लाभ उठाया उनमें से एक हैं बख्तावर सिंह ।

इस उपन्यास के अन्य पात्र हुजूर साहब के वर्ग पर आश्रित हैं । दादा के अनुष्ठान के फलस्वरूप नियुक्ति रियासत के राजा को पुत्र–प्राप्ति हुई और दादा पुजारी से

राजगुरू बन गए । परम्परा से राजगुरू का पद हरीश के पिता को मिला । इस घराने के और राजघराने के सम्बन्ध दादा के जमाने से ही रहस्यमय थे । राजा रूद्र प्रताप की माता महारानी साहिबा और हरीश के पिता का देह–सम्बन्ध था ।

सिर्री राजा भी एक क्रूर, कुटिल और षड्यन्त्रकारी व्यक्तित्व था । वह भी जी–हुजूरी पसन्द करता था तथा अहंकारी स्वभाव का राजा था ।

इस प्रकार "हुजूर–दरबार" के चरित्रों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं – इस प्रकार के वे चरित्र पात्र हैं जो अधिकारी हैं और इस अधिकार सुख की रक्षा के लिए दूसरों को त्रस्त करते रहते हैं, दूसरे प्रकार के वे पात्र (चरित्र) हैं जो दरबार से संत्रस्त रहते हैं । हुजूर – दरबार की जी–हुजूरी करो तो सब कुछ ठीक है, अन्यथा है । हुजूर – दरबार का आप विरोध नहीं कर सकते । जिसने विरोध किया, उसे संत्रस्त होना पड़ा ।

"तुम्हारी रोशनी में" चारित्रिक विश्लेषण :

गोविन्द मिश्र कृत "तुम्हारी रोशनी" में उपन्यास में रचनात्मक नैरन्तर्य के सही दिशा में अग्रसर होने का प्रमाण है । इस रचना के प्रमुख पात्र सुवर्णा (स्त्री) और अनन्त (पुरूष) है जो उपन्यास में अन्त तक दिखाई देते हैं । इनके अतिरिक्त रमेश (सुवर्णा का पति), श्याम मोहन, अरविन्द, विनय, दीपक और सोम भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

सुवर्णा और अनन्त दोनों अपने–अपने स्थान पर बन्द कली की तरह हैं और एक–दूसरे की रोशनी में धीरे–धीरे ही खुलते हैं । दोनों के सम्बन्धों के किसी रिश्ते के नाम से नहीं यह जाना जा सकता । दोनों के चरित्र स्वयं कुछ विशेषता लिए हुए है, अतः उनका विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है ––

सुवर्णा :

"तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास में सुवर्णा नाम्नी एक विवाहित युवती की कहानी है, जो अपनी सोच और अपने पति रमेश की उदार सोच और सहयोग के कारण पर्याप्त स्वतन्त्र

ढ़ंग से रहती है । अपनी सोच के प्रति सुवर्णा न तो कहीं बेईमान है और न ही किसी प्रकार के भ्रम में है । रमेश उसका पति है, किन्तु स्वाभाविक रूप से ही उसमें वह सब कुछ नहीं है जो उसे अच्छा लगता है ।

सुवर्णा "तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास का एक सशक्त पात्र है । मिश्र ने सुवर्णा को मनोविश्लेषणात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत कर उच्च स्तरीय, शिक्षित और आत्म निर्भर स्त्री की मानसिकता से परिचित कराया है । सुवर्णा रोशनी मुक्त नायिका है । सुवर्णा का पर्याय है एक प्रतिष्ठित पदाधिकारी, माँ और पत्नी के अतिरिक्त सम्पर्क में आने वाले पुरूषों की अच्छाइयों को स्नेह करती हुई एक सुन्दर और आकर्षक महिला । वह एक सुशिक्षित, बोद्धिक रूप से जागरूक, श्रेष्ठ प्रशासनिक अधिकारी जो जिन्दगी को भरपूर जीना चाहती है । पति – पत्नी के मध्य स्थापित संस्था की बुनियादी सीमाओं की अपनी शर्तो पर पूरा करती हुई भी वह मुक्त है । जहाँ पति रमेश के प्रति वह अपनी समझ के अनुसार ईमानदार है वहीं अपने अन्य पुरूष मित्रों की मानसिकता से उपलब्ध मैत्रीगत प्रतिबद्धता भी स्थापित है ।

उसके सौन्दर्य से कवितायें फूटती हैं, किन्तु रमेश उनसे अनभिज्ञ है, क्योंकि उसे सुवर्णा के शरीर पर पूर्ण अधिकार और विश्वास है । उसके पुरूष मित्र अनन्त, श्याम मोहन, अरविन्द आदि के लिए सुवर्णा की बौद्धिकता, उसका सौन्दर्य एक जगमगाती विद्युत प्रभा (ट्यूब लाइट) है – जिसकी चकाचौंध से वे अभिभूत हैं । सबके मन में तीव्र चलता है कि वे सुवर्णा पर अपना पूर्ण अधिकार जताकर उनके शरीर पर भी अधिकार प्राप्त कर सके । किन्तु सुवर्णा सजग है, वह अपने पति और बच्चों के प्रति ईमादार बने रहना चाहती है ।

जीवन जीने की बाहरी शर्तो के अनुरूप जो कुछ चाहिए, वह सब कुछ सुवर्णा के पास है । जिन्दगी का आधुनिक आर्थिक सम्पन्नता से मुक्त रख–रखाब, घर, पति, बच्चे । सुवर्णा गृहस्थिन है, पत्नी है, प्रेयसी है, माँ है, फिर भी वह बैचेन है । विकल है, किसी वस्तु से वंचित होने की असह्य छटपटाहट है उसके भीतर । स्वच्छन्द, स्वावलम्बी नारी – स्वातन्त्रय की पक्षधर सुवर्णा तर्क और बुद्धिमत्ता के सहारे जीवन जीने और संवारने में

विश्वास करती है । अपने व्यक्तित्व को पूर्णता देने के लिए वह पति रमेश के अलावा अन्य पुरूष मित्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करती है, किन्तु किसी से बँध नहीं पाती ।

सोम से वह इसलिए भावनात्मक रूप से जुड़ती है कि वह उसे दीवानगी की हद तक प्यार करता है । दीपक से वह इसलिए जुड़ती है वह उसकी सुन्दरता का पुजारी है तथा वह उसकी कविता की प्रेरणा है । श्याम मोहन से वह इसलिए जुड़ती है कि उसका कुछ स्वार्थ सिद्ध होता है, क्योंकि उससे उसे अपने कार्यालय की अनेक गोपनीय सूचनाएँ मिलती रहती हैं । दूसरे उसका हँसमुख स्वभाव संगीत से संगीत बातों को आसानी से भुलाकर तनाव – मुक्त रहकर जीवन को सुखमय बनाकर जीता है । और अनन्त से इसलिए सम्बन्ध स्थापित करती है कि उसमें थोड़ा–थोड़ा सब कुछ उसे मिलता है । वह उसके साथ भावनात्मक रूप से जुड़कर पूर्णता प्राप्त कर लेना चाहती है । अनन्त ने भावात्मकता की उस ऊँचाई तक सुवर्णा को पहुँचा दिया है जहाँ पूर्णता की अनुभूति के लिए भी अपने ही भीतर लौटना जरूरी है – "अनन्त देखो, मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गयी । रेंग–रेंग कर * * * आखिर वहाँ पहुँच ही गयी ....जहाँ तुम हो । हाँ ....मेरे भीतर उग रहा है कुछ ....अब मैं महसूस कर सकती हूँ ....हाँ, वही जिनमें तुम्हें डूबते देखती थी ।[1]

अनन्त के पूछने पर कि तुम्हें सभी की जरूरत है, कभी श्याम मोहन चाहिए कभी रमेश.... ।

तो सुवर्णा कहती है – "शायद तुम ठीक कहते हो, मुझे लगता है कि मुझे एक ऐसे व्यक्ति की तलाश रही है जिसके साथ जीवन के हर आयाम को मैं पूरी तरह जी सकूँ ....लेकिन ऐसा कोई नहीं मिला, जो मिलता है उससे बहुत हुआ तो एक हिस्सा ही भर पाता है ।[2]

---

1. तुम्हारी रोशनी में लेखक गोविन्द मिश्र पृष्ठ 165
2. वहीं पृष्ठ 88

इस विवेचन से यही झलकता है कि सुवर्णा के मन में पूर्णता प्राप्त करने की तीव्र महत्वाकांक्षा है जो उसके ईमानदार और विश्वसनीय जीवन में कुछ चारित्रिक निर्बलता भी ला देती है । इस सम्बन्ध में राजेश जैन ने संकेत दिया है – "इसके लिए वे अपनी – अपनी योग्यता के अनुसार कुचक्र वचते हैं – सुवर्णा की इच्छाओं को उत्तेजित करते हैं – पर सुवर्णा सजग है । ....पुरूष मित्रों से सम्बन्धों की गरिमा में वह अपने को शरीर के कुछ ही अंश आने देना चाहती है, जैसे चुमबन या आलिंगन तक ही उससे आगे नहीं । यह दृढ़ता तब तक बरकरार रहती है, जब तक सुवर्णा का मोह भंग नहीं होता ।[1]

सुवर्णा स्त्री स्वतन्त्रता की भी हिमायती है । वह रमेश के इस सम्बन्ध में स्पष्ट करती है – "मैं यह नहीं मानती कि सिर्फ इसलिए कि तुम मेरे पति हो, तुम यह तय करो कि मैं इससे मिलूँ", उससे न मिलूँ । बात तीन–चार आदमियों की नहीं, उस स्वतन्त्रता की है जो ईश्वर ने मुझे दी है और जिसे तुम हड़पना लेना चाहते हो ....पर बहस की क्या जरूरत ।[2]

अनन्त जब उसे उसकी माँ के घर पहुँचाने जाता है तो रास्ते में पहाड़ी स्टेशन पर अपनी स्थिति पर टिप्पणी करते हुए वह कहती है – "मुझे अच्छी नहीं लगती सारी शिक्षा के बावजूद बुनियादी तौर पर मैं कहीं हिन्दुस्तानी औरत हूँ ....क्या होगा मेरा अनन्त ।[3]

इस प्रकार सुवर्णा की निजता क्रमशः अनन्त पर खुलने लगती है ।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि लेखके ने मनोविश्लेषणात्मक तरीके से उच्च स्तरीय शिक्षित और आत्मनिर्भर एक ऐसी स्त्री के मन के अन्तर्द्वन्द्व को उभारा है जो अपनी जिन्दगी को एक काल्पनिक पूर्णता के साथ जीना चाहती है एवं उसी पूर्णता को भरने के लिए अलग–अलग व्यक्तियों में जीवन के सक–एक आयाम को भरने के लिए मृग मरीचिका वत् बनी

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम – पृष्ठ 166
2. तुम्हारी रोशनी में – पृष्ठ 149
3. वही पृष्ठ 159.

भटकती रहती है । देखिये – "छटपटाहट में वह इधर से उधर भागती है कि शायद यहाँ ....या कि कहाँ ....उसे वह मिल जायेगा ....यह या कि वह ...सुवर्णा को वह दे देगा जिसकी रोशनी में वह अपने भीतर का बहुमूलय पा लेगी ....।[1]

इस प्रकार "तुम्हारी रोशनी में" सुवर्णा की तार्किकता की भावनाओं तक पहुँचने की यात्रा है, मुक्ति और बन्धन के बीच अपनी पहचान खोलती हुई आधुनिक भारतीय नारी का संघर्ष है । मूल्य हीनता की संस्कृति के खोलनेपन को उजागर करते हुए उसे प्रेम तक लाने का आग्रह है ।

सुवर्णा के चरित्रांकन के विषय में "मधुरेश" ने टिप्पणी की है – "गोविन्द मिश्र की सबसे बड़ी सफलता यह है कि "तुम्हारी रोशनी में" की सुवर्णा को वह हाड़–माँस की एक ऐसी वास्तविक युवती के रूप में चित्रित कर सके हैं जो बेहद आत्म सजग और व्यक्तित्व सम्पन्न होते हुए भी आधुनिकता एवं नारी मुक्ति के नाम पर किसी किस्म की उच्छृंखलता को प्रश्रय नहीं देती । उसके चरित्र का यह सन्तुलन, पारम्परिक अर्थ में वर्जना का तिरस्कार करते हुए भी एक नये प्रकार की मर्यादा की सृष्टि करता है । आधुनिकता के नाम पर पलने वाले हर प्रकार के छद्म और जिन्दगी के एक दोहरे ढर्रे से वह स्वयं ही नहीं बचती, उसकी रोशनी में ओरों के ढोंग भी दूर तक उघड़ते चले जाते हैं ।"[2]

अनन्त :

"तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास का द्वितीय पात्र है अनन्त । वह एक मध्यम वर्गीय, कस्बई मानसिकतायुक्त संवेदनशील और विचारवान् चरित्र के रूप में हमारे सामने आता है । वह लेखन का कार्य भी करता है । कोमल–कोमल भावनाओं का पुजारी है तथा कोमलता के प्रति आकर्षित भी होता है । स्त्री सम्बन्ध को एक गहराई के साथ महसूस

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम – पृष्ठ 43
2. वहीं पृष्ठ 154.

करता है, क्योंकि कस्बे के और मध्यम वर्गीय लोग स्त्री से सम्बन्ध बनाना एक बड़ी बात समझते हैं ।

अनन्त एक अति संवेदनशील युवक भी है, इसीलिए सुवर्णा को भावनात्मक रूप से चाहने लगता है । वह सुवर्णा की ओर उसके आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बढ़ता है और उसे यह एहसास करा देता है कि वही उसे अच्छी तह और सचमुच समझता है । अनन्त से ही मर्यादा, भावात्मक हिस्सेदारी और प्रगाढ़ संवेदनशीलता सुवर्णा को प्राप्त होती है । वह अब तक किसी में नहीं मिली ।

अनन्त को यह भली भाँति ज्ञात है कि सुवर्णा एक विवाहित गृहिणी है दो बच्चो की माँ है, और एक जिम्मेदार युवती है, फिर भी उसकी ओर आकर्षित होता है । वह मित्रता की सीमा लाँघकर उससे शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित करना चाहता है तथा सुवर्णा से स्पष्ट कहता भी है – "तुम्हारे साथ एक पूरी रात गुजारने का सपना अवसर देखा करता हूँ जहाँ शरीर, मन, आत्मा सब एकाग्र हो जायेंगे, यह अनुभव कैसा होगा, कितना विलक्षण, प्राणावान् ....।"[1]

आगे अचलकर उसकी मानसिकता में थोड़ी–सी परिपक्वता आ जाती है – "प्यार शायद यही होता है, जब एक दूसरे का श्रेष्ठ हम तक आता है, शरीर को बहुत पीछे छोड़कर उसके शरीर को छूकर ही अब में इस श्रेष्ठ में नहीं लेता हूँ ।"[2]

अनन्त सुवर्णा की इस भावना से प्रभावित है कि वह किसी से स्वार्थ वश प्रेम नहीं करती । अनन्त सोचता है – "वह मुझे सिखा गयी है – प्रेम किसी पर अधिकार करना, उसे ठीक अपने जैसा बना लेना नहीं, हो होना । ....।"

इस प्रकार अनन्त एक सच्चा प्रेमी है । अपने प्रेम की दुहाई देते हुए कहता है – "अच्छी बात है, हो सके तो यह महसूस करने की कोशिश करना कि तुम अकेली नहीं

---

1. तुम्हारी रोशनी में – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 95
2. वहीं – पृष्ठ 99

हो, वे सभी दु:ख सह रहे हैं, इस क्षण हमारे साथ है – भले ही हम उन्हें न जानते हों। हम दोनों अलग–अलग अपना ....तुम भी, मैं भी। तुम चाहे तो ....।"

यद्यपि अनन्त एक मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी, भावुक, संवेदनशील, विचारवान, भावनाओं से ओतप्रोत और आत्मीय स्नेह करने वाले पात्र के रूप में उपस्थित हुआ है, किन्तु दूसरी दृष्टि से उसका चरित्र कुछ अच्छा–सा नहीं लगता है, क्योंकि वह एक शादी शुदा, बच्चों की माँ और जिम्मेदार युवती सुवर्णा की ओर आकर्षित होता है और उसका आज्ञाकारी सा बनकर जीवन ढोता है।

रमेश :

रमेश सुवर्णा का पति है और इस उपन्यास में वह एक आधुनिक भारतीय पति के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होता है जो पूरी स्वतन्त्र पत्नी को सहन नहीं कर पाता। वह उदारवादी दृष्टिकोण का व्यक्ति है। रमेश विश्वविद्यालय में सुवर्णा के साथ पढ़ता था, तभी से सुवर्णा की ओर आकृष्ट होकर अपनी ओर से विवाह का प्रस्ताव भिजवाया था और विधि–विधान पूर्वक सहमति से दोनों का विवाह भी हो जाता है। सात वर्षों के वैवाहिक जीवन में दो बच्चों के साथ वे लोग एक सुखी और आत्म सन्तुष्ट दम्पत्ति का प्रभाव ही छोड़ते हैं।

रमेश को सुवर्णा के चरित्र पर पूर्ण विश्वास था, इसी लिए वह सुवर्णा के पुरूष मित्रों के साथ मिलने–जुलने पर कोई आपत्ति नहीं उठाता। किन्तु जब उसकी मित्रता सीमा लाँघकर आगे बढ़ जाती है तो उसे क्रोध भी आ जाता है। वह पत्नी पर अपना पूर्ण अधिकार जताने लगता है। श्याम के जन्म दिन पर पार्क में जब सुवर्णा जैसे ही बर्फी का एक पीस (टुकड़ा) श्याम के मुँह की तरफ बढ़ाती है तो एकाएक खलनायक पति के रूप में वहाँ प्रकट हो जाता है। इसी के बाद रमेश का संस्कार ग्रस्त, सँकरा और जड़–पुरूष फट पड़ता है।

एक ओर तो रमेश पत्नी पर अधिकार जमाता है उसे किसी दूसरे पुरूष के साथ देखना पसन्द नहीं करता है तो दूसरी ओर वह स्वयं अपनी सहकर्मी उर्वशी से प्रेम सम्बन्ध बनाए हुए है ।

इस प्रकार रमेश का चरित्र स्वयं में विरोधी है । सुवर्णा का भी मोह भंग तब होता है जब उसे ज्ञात होता है कि उसके पति रमेश के उर्वशी के साथ भी शारीरिक सम्बन्ध है । बावजूद इसके वह वह सुवर्णा पर अपने पतित्व का महत्व थोपता है । उसे परतन्त्र देखना चाहता है, जबकि स्वयं स्वतन्त्रता का पक्षपाती है ।

इसके अतिरिक्त रमेश दुनियादारी को अच्छी तरह समझ चुका है, इसीलिए सुवर्णा से पुरूष सम्बन्धों के बारे में कहता है – "विज्ञान के युग में ऐसी बातें बीमार लोग करते हैं, इस साथ रहे जमीन–जायदाद में बढ़ोत्तरी करें, हम और हमारे बच्चे आगे बढ़े, तरक्की करें और क्या चाहिए । प्यार–प्यार तो जितना चाहिए ...रात को चलता ही रहता है ....तुम फ्लर्टिंग भी चलो हम से कर लो, लेकिन यह दिलवाला सिलसिला, यह फिल्माना चक्कर खतरनाक होता है, इन्वाल्वमेन्ट हो सकता है ।"[1]

इस प्रकार वह किसी के साथ भावुकता और संवेदनशीलता के साथ नहीं जुड़ता है कि वह "चीजों को दिमाग से चिपकाये नहीं घूमता कि घर में अपने आदमी की बगल में लेटे हुए हैं और मन में घूमा हुआ है कोई और ....।"[2]

अतः देखा जाय तो रमेश कहीं–कहीं प्रभावशाली भारतीयता की पद्धति से प्रस्तुत हुआ है तो कहीं आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भी उस पर परिलक्षित होता है । इस प्रकार वह भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता का मिश्रित रूप ही उपस्थित करता प्रतीत होता है ।

---

1. तुम्हारी रोशनी में – पृष्ठ – 127–128
2. वहीं – पृष्ठ – 127

श्याम मोहन :

श्याम मोहन "तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास में शिक्षित समाज का एक व्यावहारिक, खुशमिजाज चरित्र के रूप में सामने आया है । स्त्री से मित्रता वह अपने समाज में आवश्यक मानता है । जीवन को खुशी–खुशी जीने में तथा गहरी से गहरी बात को भी हँसी में उड़ा कर तनावमुक्त हो जाने में उसकी एक विशेषता है एक गुण है । उसके इसी हँस मुख स्वभाव के कारण सुवर्णा उसके प्रति आकर्षित है । और वह कहती है – "नहीं ऐसा कुछ नहीं, पर मिलो तो अच्छा लगता है, वह भला आदमी है, साफ–सुथरा, दूसरों की मद्‌द करने वाला, निष्कपट । हर समय हँसता रहता है, उसके साथ जिन्दगी बड़ी ही हल्की–फुकी चीज हो जाती है । मन गेंद की तरह उचकता है । आई एम कौण्ड ऑफ हिम ....।"

इस प्रकार श्याम का चरित्र अत्यन्त साफ–सुथरा–सा प्रतिबिम्बित होता है ।

"धीरे – समीरे में" चरित्र चित्रण :

गोविन्द मिश्र के इस उपन्यास में जीवन जैसा बहुरंगा है, वैसा ही है यह यात्रा । इस यात्रा "ब्रज यात्रा" की कथा भी विच्छिन्न है, अलग–अलग पात्रों को अलग–अलग स्थान पर छूती हुई निरन्तरता और विच्छिन्नता, इन दो धुरियों पर कथा का समस्त टिकाव है । प्रभाव की सिद्धि भी दन दो अभिप्रायों के मध्य हुई है । यात्रा निरन्तर है, मुख्य है और प्रभाव भी । उपन्यास का प्रभाव पात्रों से अधिक यात्रा–परिवेश के सातत्य में से हाथ लगता है । जो मुख्य पात्र हैं, उनके जैसे अनेकों पात्र हैं जिनकी जीवन–स्थितियों का आगे–पीछे बयान है ।

उपन्यास की कथा के केन्द्र में "सुनन्दा" है जो एक अध्यापिका (टीचर) है, वह अपने खोये हुए बेटे की खोज के निमित्त इस यात्रा में है । इसी यात्रा में उसे नन्दन मिला

था, अब उसे किशोर की खोज है । इस खोज का सन्दर्भ वैसे भी उपन्यास की पूरी पृष्ठ भूमि में अपना विस्तार पा लेता है ।

"धीरे समीरे" उपन्यास के पात्रों का परिचय या नाम गिनाते हुए डॉ. सूर्यबाला ने लिखा है – "धीरे समीरे ....पढ़ने के दौरान बराबर ऐसा लगता रहा जैसे स्वयं लेखक और पुस्तक के अन्यान्य चरित्रों के संग–संग मैं भी बृज की चौरासी को झोंकी उस प्रदक्षिणा में शामिल हो गयी हूँ जहाँ एक तरफ है सत्येन्द्र, नरेन्द्र, रघु, राधे और गंगाधर, तो दूसरी तरफ है सुनन्दा, रत्ना, ब्राह्मणी, मंजुला बेन और रमा जीजी हैं । साथ ही नयी पीढ़ी की शैलता भी ....सब चल रहे हैं ....।"[1]

इस प्रकार इस उपन्यास के पात्र अनेक हैं किन्तु मुख्य कथा छह सात पात्रों सुनन्दा, नन्दन, सत्येन्द्र, किशोर गंगाधर महाराज, मंजुला बेन और शैलजा को आधार बनाकर चली है । जिस क्रम में ये पात्र फोक्स में आते हैं, छिटक भी जाते हैं और उनका स्थान दूसरे पात्र ले लेते हैं । प्रमुख पात्रों की चरित्रगत समस्याएँ और उनका विश्लेषण इस प्रकार है –

सुनन्दा :

सुनन्दा "धीरे समीरे" उपन्यास की नायिका है, जो ब्रज की यात्रा पर आयी हुई है । वह एक साधारण परिवार की प्राइमरी स्कूल की अध्यापिका है । "धीरे समीरे" उपन्यास में ब्रज – संस्कृति से उभारते परिवेश में सुनन्दा के जीवन की कहानी है । सुनन्दा कितनी ही भारतीय नारियों में से एक है जिनके जीवन की आकृति हमारे समक्ष आती है – "चोट खाती, फिर उससे भी ज्यादा चोट खुद दे देती, किसी – किसी तरह जीती हुई, जीती कम भटकती हुई ज्यादा जीवन का हर दिन मृत्यु के इन्तजार में कटता हुआ ।[2]

ऐसी भारतीय नारी अपने खोये पुत्र को पाकर इतनी बलवती हो उठती हे कि

1- धीर समीरे, पृ0 84.
2- धीर समीरे, पृ0 161.

पत्नी भी हैं माँ भी । वह नन्दन की पत्नी है । सुनन्दा और नन्दन दोनों ही ब्रज की यात्रा में आये है, इसी यात्रा में दोनों की मुलाकात होती है । नन्दन सुनन्दा के व्यक्तित्व को देख कर उसकी तरफ आकर्षित होता है और उसकी माँ के समक्ष विाह का प्रस्ताव रखता है । एक बड़े घराने से सम्बन्ध रखने के कारण सुनन्दा और नन्दन का विवाह हो ही जाता है । सुन्दर के पुत्र भी उत्पन्न होता है, जिसका कुछ समय बाद अपहरण कर लिया जाता है । अपने पुत्र की खोज में वह पुनः ब्रज की यात्रा पर निकल पड़ती है, जहाँ सत्येन्द्र से उसकी भेंट होती है । सत्येन्द्र कुछ गुण्डों से सुनन्दा को बचाता है और बाद में उसका खोया हुआ पुत्र भी मिल जाता है । सत्येन्द्र के प्रति वह अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त करती है।

सुनन्दा का चरित्र ऊपर से दिखने में तो एक स्कूली अध्यापिका और आदर्श गृहिणी का है, किन्तु अन्दर से वह परेशान, उदासीन और अक्रामक भी है । उसकी अलिप्त मनादेशा मिश्र जी को मान्य है, क्योंकि वह उस विरसता के मूड को गहरा करती हैं । सुनन्दा का चरित्र किसी दूसरी तरह से विच्छृंखलता में योगदान करता है । वह अपने पति जो बिना कर्तव्य किए और परिरम किए एक सफल लेखक बनना चाहता है, को गृहस्थ का भार ढोने के लिए कोई छोटो–मोटा काम ढूँढ लेने का आग्रह करती है । उसने नन्दन को जानने, समझने की कभी कोई चेष्टा भी नहीं की । एक–दूसरे को न समझ पाने के कारण ही नन्दन उसे एक बार को छोड़ जाता है, तभी उसका पाँच छह साल का बच्चा खो जाता हे । किन्तु खोये हुए बच्चे किशोर को पा लेना या ढूँढ लेना सुनन्दा के आन्तरिक–स्व का राग–अुनरागमय आवेग है । वही उसे दूसरी बार इस यात्रा में लाया है, जबकि न उसके पास इस किशोर की खोज के लिए कोई साधन है, न कोई संकेत, न किसी प्रकार की सूचना या सुराग । पर उसके आन्तरिक–स्व का आवेग ही उसकी शक्ति और कार्य का स्त्रोत है ।

सुनन्दा पर क्यों हमले होते हैं, उसे पता नहीं, क्यों कोई उसे समाप्त कर देने या अपहरण करने पर उतारू है, इसका उसके पास कोई उत्तर नहीं, न ही काई प्रत्यक्ष कारण ही । किन्तु लेखक मिश्र ने सुनन्दा की अस्मिता के माध्यम से उन सारी समस्यों की

तह में जाने का प्रयास किया है जो नारी वर्ग को चारों ओर से जकड़े है,जो हमारी घिनोनी मान्यताओं और पुरूष प्रभुसत्तावाली समाज शास्त्रीयता की देन है, जो नारी को उसका अधिकार देने के लिए भी तैयार नहीं है या उन्हें स्वीकार करने तक के लिए भी तैयार नहीं है जो उसे परम्परा और कानून ने दिये हैं 1 परन्तु सुनन्दा का मानुषी होने का अस्तित्व ही उसका आत्मबोध है 1 सुनन्दा अपने – आपके अलावा किसी अन्य पर निर्भर नहीं है, उसकी यह आत्म–निर्भता तभी से है, जब से उसने होश संभाला है 1 उसने अपने बीमार पिता की देख–भाल की थी और माँ को अंतिम दिन तक उसी पर आश्रित रही 1

इस प्रकार सुनन्दा के चरित्र में आदर्शता है, कृतज्ञता है, विवेक है. वहीं आत्मनिर्भता और साही भी है 1 अपने बच्चे किशोर की तलाश में उसकी साहसिकता और अकर्मण्य पति नन्दन से तलाक देने का निर्णय सुनाते हुए एक आत्म–निर्णय करने वाली आधुनिक नारी सुनन्दा के रुप में यात्रा–समाप्ति के समय तक उभरती है 1

<u>नन्दन :</u>

इस उपन्यास का नन्दनएक ऐसा चरित्र है जो कर्त्तव्य किए बिना ही अपने उद्वेश्य में सफलता चाहता है 1 वह एक सफल और महान लेखक बनने की महती इच्छा रखता है और बिना कुछ काम किए ही सिर्फ लेखन का कार्य करना चाहता है ।इसी लिए वह ब्रज की यात्रा पर निकलता है कि उसे को ऐसा धनाद्‌य जीवन साथी मिल जाये जिसकी सहायता से उसका उद्वेश्य सफल हो जाये 1 उसे इस यात्रा में सुनन्दा मिल जाती है, और उससे वह विवाह कर लेता है ।

इस प्रकार नन्दन सुनन्दा का पति है, किशोर का पिता बन जाता है, वह एक लेखक है और लेखक होने की इच्छा से आक्रांत है ।उसके माध्यम से मिश्रजी ने लेखकीय जीवन की बहुत–सी भीतरी–बाहरी समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है ।

अर्थ(धन) की ओर से निश्चिंत नन्दन और सुनन्दा में तनाव उत्पन्न हो जाता है, वह ऐसे वातावरण में रहना नहीं चाहता है अतः वह किसी को कुछ भी बिना बताये ही घर से चला जाता है ।यहाँ पर नन्दन की छवि एक आलसी, कर्तव्यच्युत और भीरू पुरूष की सी छलकती है, जो पुरूष वर्ग के लिए अच्छी नहीं है ।

सुनन्दा को छोड़ने के बाद वह लखनऊ पहुँचता है जहाँ पीयूष मित्र की सहायता से उसके लेख आसानी से छपने लगते हैं । प्रारम्भ में तो उसके लेखों की प्रशंसा होती है, किन्तु कालान्तर में झूंठी प्रशंसा की भूल-भुलैया में वह बड़ा लेखक बनने के स्वप्न देखने लगता है । ।पीयूष के कहने पर वह लेखक संघ का सदस्य भी हो जाता है । एक लेखक सम्मेलन में भी शामिल होता है जहाँ उसके लेखन की बड़ी प्रशंसा होती है, फलस्वरूप वह अधिक प्रसिद्धि पाने के लिए उपन्यास लिखना शुरू कर देता है । तदनन्तर एक बड़ी हस्ती से भेंट होने पर वह एक मासिक पत्रिका का सम्पादक बन जाता है और कुछ समय बाद घुटन महसूस करता हुआ वह स्वंय को सम्पादक की बजाय एक क्लर्क ही समझने लगता है ।

फतेहपुर में हुए युवा लेखक सम्मेलन में योग्य और अनुभवी लेखक एवं बुजुर्ग दादा साहब को अध्यक्ष न बनाये जाने पर वह स्पष्ट करता है – यह कैसा लेखक सम्मेलन है जो दादा साहब जैसे बड़े लेखक का अपमान करता है । इस पर श्रोतागण आश्चर्य में पड़ जाते हैं, किन्तु दादा जी उसे गम्भीरतापूर्वक समझाते हैं और उसकी हिम्मत की तारीफ भी करते हैं, कहते हैं यदि तुम्हें ऊपर उठना है तो इन्हीं लोगों का साथ देना पड़ेगा ।अन्यत्र एक लेखक ने कहा था – "लेकिन अगर आप संघ के सदस्य हैं तो उसके अनुशासन में तो चलना होगा, उच्छृंखलता कैसे बर्दाश्त की जा सकती है ?इस पर नन्दन को कहना पड़ा – "लेखक संघ कोई कामगार यूनियन तो है नहीं ।"[1]

---

1. धीर समीरे पृ0 146

अपने इस स्वतन्त्र स्वभाव के फलस्वरूप नन्दन को एक जगह घोर अपमान भी सहना पड़ा । लेखक संघ की बैठक में अपमानित होने पर नन्दन वापिस लौटता है तो सोचता है कि साहित्य जिसे वह अपने जीवन में सर्वोपरि मानता आया है, उसको लेखक ऐसा व्यवहार, जो उसके लिए कितनी पवित्र चीज है, उसे ऐसे दुत्कारते हैं लोग। "बात समाजवाद की करते हैं और वह तानाशाही लेखकों का संघ, लेखकों का सम्मेलन और कुत्तों की तरह चीथा-चौंथी करते हुए ....।" 2

इस प्रकार मिश्रजी ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि लेखन करना भी आसान नहीं है ।नन्दन के माध्यम से लेखक ने यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि जो लोग अपने छोटे से परिवार, पत्नी और बच्चे के जीवन-निर्वाह के लिए संर्घष नहीं कर सकते वे लेखन जैसा बड़ा संर्घष पूर्ण कार्य कैसे कर सकेगें 1 लेखन के लिए तो पूरे समाज से जूझना पंड़ता है ।

"धीर-समीरे" उपन्यास में नन्दन एक आलसी, कर्तव्य तथा संघर्ष से भागने वाले पात्र के रुप में चित्रित हुआ है जो न तो अपने पारिवारिक जीवन में सफल हो पाता है और न ही लेखन कार्य में, क्योंकि वह बिना संघर्ष किये और कर्तव्य किए ही सब कुछ प्राप्त करना चाहता है । कोई भी विशिष्टता उसमें व्यक्तिगत जैसी नहीं लगती वह स्वंय में उद्धेश्य-निष्ठा रहित दिखता है । उपन्यास में अपने से जुड़े तीनों संदर्भ-बिन्दुओं (लेखक, पति और पुत्र)में से हर जगह वह बे-पहचाना, बेगाना है । अत: उसकी स्थिति खुलेआम नकारात्मक-सी उसके रहे-सहे आत्मभाव को भी ध्वस्त कर देती है । वह उपन्यास का उपेक्षित पात्र ही बना रहता है । उसके प्रति करूणा का भाव उपज पाये, वह भी संभव नहीं पाता ।

---

2. वही - पृ0 148

सत्येन्द्र :

सत्येन्द्र एक वकील है, यही वकीली चतुराई, काइयापन, हर वस्तु को शंका की दृष्टि से देखना, घटनाओं के कार्य – कार्य और हेतु जानने की जिज्ञासा उसमें है । सत्येन्द्र का चरित्र उपन्यास के प्रारम्भ में जो आशा – अपेक्षाएँ जगाता है, वह उत्तरार्द्ध में तेजी से खण्डित होने लगती है । वह जिन माध्यमों, कुटिलताओं और कुचक्रों में उलझता है, वह सुनन्दा के साथ बनते–बनते पुल को ही नहीं, उपन्यास में सातत्य और विस्तार के पहले सकारात्मक आधार को भी धमकाने लगता है । प्रारम्भ में वह ब्रज यात्रा पर दुबारा निकली सुनन्दा की सहायता करता है, उसको गुण्डों से बचाता है, उसके खोये हुए पुत्र की खोज में उसकी मद्द करता है और शनैः–शनैः उसके शारीरिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होकर उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित करना चाहता है, किन्तु सुनन्दा की सजगता से वह सब कुछ नहीं हो पाता । सुनन्दा की निश्छलता के समक्ष उसका वकीलपन हार मान जाता है ।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में ही सत्येन्द्र शुचिता बोध का स्पर्श करता है, वहीं वह प्रखर तरह से कुटिल और चाल बाज भी हो गया है । यह सब कुछ इतना पास–पास इतनी विकट तेजी से, एक – दूसरे की आहटों के अतिक्रमण के बीच हुआ है कि प्रभाव की निर्मलता निःसत्व हो गयी है ।

शैलजा :

शैलजा आज की आधुनिक युवती का प्रतिनिधित्व करती है और उन अधबनी चरित्र मूर्तियों का दर्शन बनती है, जो समाज में बहुतायत से है । उसका चरित्र उपन्यास के उत्तरार्द्ध में महत्व पाता है, भावात्मक आश्रय बनता है, पर इस क्रम में वह कुछ अधबनी है । उसका आवरण–एक जिज्ञासा के आधार के रुप में है । आधुनिकता के सत हीपन के समक्ष उसकी एक विरोधी रूप में उतरने जैसी स्थिति है । यह एक सम्भावनाशील स्थिति है, किन्तु यात्रा

में निष्पन्न भाव बोध को झेलने के लिए वह भी एक तैयार पात्र नहीं कही जायेगी । यह आपूर्ति है, एक ऐसी भाव – सम्पदा के लिए जिसके लिए उसका चोला ओछा है ।

गंगाधर महाराज :–

"धीरे समीरे" उपन्यास में गंगाधर महाराज का चरित्र एक ऐसे चरित्र के रूप में चित्रित हुआ है जो मानवता का प्रतीक है और मानवता ही जिसका अर्थ है । वे निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करना कर्तव्य समझते हैं और इसी परोपकार की भावना के दायित्व के निर्वाह में वह आत्मिक शान्ति का अनुभव करते हैं । इसे वे ईश्वर की सच्ची पूजा मानते हैं । लेखक गोविन्द मिश्र का मत है कि यदि हम पूजा – पाठ करते हैं तो हमारे अन्दर करूणा इतनी बढ़ जाती चाहिए कि हम सबके प्रति दयावान हो जायें, नहीं तो बेकार ।"[1] और यही विशेषता गंगाधर महाराज की है जिससे वे मानवता के प्रतीक के रूप में सामने आते हैं ।

गंगाधर एक विधुर और निःसन्तान व्यक्ति है । पत्नी के देहान्त के बाद लोगों ने बहुत कहा कि दूसरा विवाह कर लो पर वे बोलो – "जब ईश्वर पहले पर राजी नहीं हुआ तो क्या दूसरा ओर क्या तीसरा ।"[2] "मन में वैराग्य ही उत्पन्न होता चला गया और वह कह उठे – जिस माया – मोह से ईश्वर दूर खींचकर ले गये, उसी को जान बूझकर फिर से घर ले आता, छाती से चिपका लेता ।"[3]

गंगाधर अपने गाँव में ही अपने छोटे–से खेत पर बनी कुटिया में रहते हैं । घर भाई के बच्चों के लिए छोड़ दिया है । हर वर्ष यात्रा में आते हैं और यात्रा में आये हुए यात्रियों के साथ सद्‌भावपूर्ण ढ़ंग से रहना, किसी को दुःख या तकलीफ है तो उसे पूरा करना

---

1. धीरे समीरे – पृष्ठ – 181
2. वही – पृष्ठ – 184
3. वही – पृष्ठ – 186

वे अपना कर्तव्य ही समझते हैं । यात्रियों के थकने पर या निराश होने पर वे पूरा उसे प्रोत्साहित करते हैं । यात्रा में हास्यपूर्ण हल्की फुल्की बातें करते हुए वातावरण को सरस और सरल बनाये रखने का भरसक प्रयास करते हैं ।

यात्रा में बम्बई के एक रईसी घराने से आयी और मानवता को धन – मद के कारण भूल चुकी मंजुला बेन जो अचानक गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो जाती है, की दौड़ – दौड़कर सहायता करते हैं, वे तुरन्त डाक्टर बुलाकर उपचार कराते हैं । डाक्टर के जाने के बाद महाराज राधे के साथ ही तब तक रहे जब तक कि मंजुला बेन का स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ । स्वस्थ होने पर गंगाधर महाराज ने अपना परिचय देते हुए कहा – "सेठानी जी, मैं काशी निवासी गंगाधर महाराज हुँ ।"[1]

दूसरे दिन आप हाल चाल पूछने आये और मंजुला बेन के बिना कहे ही चटाई पर बैठ गये और समझाने लगे – "देखिये बहिन जी, शरीर आपका है, उसे ठीक रखने की जो भी चिन्ता है, सो आपको करनी है, कोई और सुसराधिकार करने वाला नहीं है । दवा–दाफ एक तरफ मन–मिजाज एक तरफ, जिसमें दूसरे का पलड़ा भारी । सो खुश रहा करिये ।" और यहाँ अपने आपको अकेला न समझिएगा, निःसंकोच बुला लीजिएगा ।"[2]

वे सादा भोजन ही करते हैं जैसे दलिया " सत्तू और दलिया, यह तो हमारा प्रिय भोजन है, हमेशा साथ । एक सत्तू और एक दलिया, हाथ की चक्की का पिसा कठिया गेहूँ का दलिया है, हम अभी भिजवाये देते हैं ।"[3]

जब सेठानी उन्हें अपना नौकर बनाकर साथ ले चलने की बात कहती है तो वे अपमान–सा महसूस कर तिलमिला उठते हैं, क्योंकि वे स्वतन्त्र व्यक्तित्व के पक्षधर हैं ।

---

1. धीर समीरे – पृष्ठ – 120
2. वहीं – पृष्ठ – 121
3. वहीं – पृष्ठ – 121

खुले आसमान के नीचे खेत पर कुटिया में सोना अच्छा लगता है, न कि बम्बई के कई मंजिलें भवनों में गद्‌दों पर ।

वह सद्‌भावनापूर्ण और क्षमाशील व्यक्ति भी है । इस प्रकार गंगाधर महाराज उस उपन्यास में एक प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में उभर कर उपस्थित हुए हैं ।

मंजुला बेन :

मंजुला बेन इस उपन्यास का ऐसा स्त्री – चरित्र है जो मन की शान्ति और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए पूजा – पाठ भी करती है, भेंट – चढ़ावे भी चढ़ाता है और फिर भी मन की कटुता, अहं और अशुद्धता को नहीं छोड़ता । मंजुला बेन बम्बई के करोड़पति रण छोड़ भाई दयाभाई शाह की धर्मपत्नी है । उसका एक कपोल जला–सा है और कुछ लँगड़ा के भी चलती है, किन्तु चेहरे पर अभिमान और सतत् खिन्नता है । अहंकार उनकी अमीरी का है, उन्हें इस बात का घमण्ड है कि वे करोड़पति की पत्नी है और खिन्नता इसलिए कि उस घर में उनका कोई सम्मान नहीं, पूछ नहीं । पति अपने व्यवसाय में व्यस्त हैं, उन्हें दिन – दूरा रात चौगुना कमाने की धुन है । मंजुला बेन दौलत और नौकरों के साथ ही अपना जीवन व्यतीत करती रहती है ।

वह भी अपने नौकर राधे के साथ ब्रज यात्रा में आयी हुई है पूण्य – प्राप्ति की आशा में, ईश्वर की सेवा में भी वे अपने दर्प को नहीं त्याग पाती हैं । मंजुला बेन औरतों को धधियाती, एक किनारे करती अपने लिए रास्ता बनाती आती है ....पीछे–पीछे पूजा की थाली लिए चलता है उनका नौकर राधे ।"[1] राधे को वतन भी इसी बात का मिलता है कि वह उनके इशारे पर नाचता रहे ।

---

1. धीर समीरे – पृष्ठ – 122

शिवालय में मंजुला जी को ज्यादा समय लगता है, इस लिए वे वहाँ पसरकर फैलकर बैठती हैं और घण्टे भर तक पूजा करती रहती हैं, किन्तु 50 गज की दूरी पर खड़े पीपल के पेड़ तक चलने का कष्ट नहीं करती, राधे नौकर को ही कहेगी – "जाओ, यह चढ़ा आओ वहाँ ।" यदि कहीं अक्षत – पुष्प चढ़ावे का क्रम गड़बड़ा गया तो फिर आई राधे की शामत ....।[1]

एक करोड़ पति की पत्नी होने पर भी मंजुला लाचार और बे–बस है । कोई बात करने वाला भी नहीं, किससे कहे मन की बात । ईश्वर ने उन्हें सुन्दर नहीं बनाया और माँ–बाप ने पढ़ा–लिखाकर चटक नहीं किया । जिसके दु:ख वे आज तक भी भोग रही हैं । जिसका मान घर में पति न करे, उसे लड़के बहु, नाती – पोते कहां से पूछेंगे । बस, पूजा पाठ में मन लगाये रहती है, दिल तो क्या लगता है ....हाँ, समय कट जाता है ।

मंजुला बेन बाहर से कुछ सख्त दिखती हैं, किन्तु अन्दर से एकदम फुसफुस हो आयी हैं । इसलिए कभी–कभी तो इच्छा करती है कि खत्म हो जाये ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मिश्र जी ने एक ऐसी नारी का चित्र खींचा है जो अपने ही घर में अपमानित है, पति, पुत्र बहू कोई भी उसे सम्मान नहीं देता और न ही उसकी घर में जरूरत समझी जाती है । ऐसी नारी की मन: स्थिति क्या हो सकती है ? को मनोविश्लेषणात्मक रूप से यहाँ प्रस्तुत किया गया है । ऐसी नारी में हीनता से ग्रस्त नारी के प्रतीक के रूप में मंजुला बेन उपस्थित हुई हैं ।

इस प्रकार समग्र रूप से कहा जा सकता है कि मिश्र जी के विभिन्न उपन्यासों में भिन्न – भिन्न प्रवृत्तियों के लोगों से हमारा साक्षात्कार होता है । यही चरित्रगत समस्या आज के समाज में चतुर्दिक प्रतिबिम्बित होती हुई दिखाई देती है ।

1- धीर समीरे, पृ0 – 18–19

उपन्यासगत समस्यायें :

"गोविन्द मिश्र की रचनाशीलता" शीर्षक निबन्ध में डॉ. भगवान दास वर्मा ने लिखा है – मैंने बहुत पहले जब पहली दफे गोविन्द मिश्र को पढ़ा था, मैं उनकी तरफ दो बाजुओं से आकर्षित हुआ था । एक जगह वे समकालीन राजनीतिक – सामाजिक जीवन की विसंगतियों को उसकी तमाम बिडम्बनाओं के साथ उधाड़ रहे थे । इस स्तर पर वे बुद्धिजीवियों की अवसर वादिता, चापलूसी वृत्ति तथा दोगलेपन को चित्रित करते हुए सत्ताकांक्षा की पतनशील तस्वीर को अंकित कर रहे थे । यहाँ उनकी भाषा में गजब का व्यंग्य और कथा की खानी है । दूसरी जगह वे राजनीतिक सत्ता – गुटों से बिल्कुल अलग एवं ऐसी दुनियां को उजागर करने में लगे थे, जहाँ रिश्तों का बनना – विगड़ना, समय के साथ कम परिवेश के साथ अधिक गुँथा हुआ होता है । इस स्तर पर वे बदलती सामाजिक चेतना को मॉटी की शिनाख्तों के साथ जोड़कर एक नये सृजनशील भारतीय चरित्र को अंकित कर रहे थे । यहाँ उनकी भाषा में गजब की चित्रात्मकता और संवेदनाओं की डूब थी । दोनों जगह केन्द्र व्यक्ति ही था ।"[1]

मिश्र जी के प्रत्येक उपन्यास पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए यों कहा जा सकता है कि प्रत्येक उपन्या की मुख्य समस्या को उभारते हुए उन्होंने लिखा है – "वह/अपना चेहरा" की क्लर्कों की दुनियां लेखक को इसलिए पीड़ा देती है कि वहाँ आदमी रैंको की संज्ञाओं से नियन्त्रित है । वह इन ऊपरी शिनाख्तों को तोड़कर मानवीय धरातल तक पहुँच क्यों नहीं पाता, इसका दु:ख लेखक को है । ...."उतरती हुई धूप" ....की भावुक वैयक्तिकता भी अपनी व्यंजना में कस्बाई चेतना, प्रेम एवं सौन्दर्य जैसे वैश्विक मूल्यों को संकेत करती है । "लाल–पीली जमीन" उपन्यास में एक खास ऑचल के तौर तरीकों ख्यिुचलों, त्यौहारों में व्यक्त सांस्कृतिक विरासतों तथं सामाजिक वर्तावों को चित्रित किया गया

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम – डॉ. चन्द्रकान्त वांदिवडेकर – पृष्ठ 13

है । इनके अर्न्तविरोधों में मध्य एक संगति को तलाशा गया हे । मनुष्य की मूल पशु प्रवृत्तियों के सभ्यतर होते निकास पैटर्न को देखा गया है और देखा गया है कि भारतीय आदमी इतसे कहाँ विशिष्ट है । ....

"हुजूर–दरबार" संक्रान्ति के मोड़पर व्यवस्था और व्यक्ति के द्वन्द्व की बहु आयामी कथा को उद्‌घाटित करते हुए सामंती ऐयाशी के मंच पर शोषण और विकृति की साझेदारी कैसे नियति और रूप–तुष्टि के माया जाल खड़े कर शोषित प्रजाजनों की जागरूकता को समाप्त कर देती है – इसका बड़ा ही सूक्ष्म वर्णन किया है । ....."तुम्हारी रोशनी में"

आधुनिक स्त्री – पुरूष सम्बन्धों की एक विलक्षण परत को तलाशने की कोशिश की गई है । ....

"धीरे समीरे" में ब्रजभाषा के माध्यम से जिन्दगी के गहरे सवालों को उकेरने का प्रयास किया गया है । * * * * जारी है एक तरफ उच्च मध्यम वर्ग की बदलती तस्बीर को उसके विविध आयामों में प्रस्तुत किया गया है, तो दूसरी तरफ धर्म, दर्शन, अर्थ और व्यवहार के आपसी सम्बन्धों की उलझन को चित्रित किया गया है ।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यासों में अनेक समस्याओं को उभारा है जो प्रत्येक उपन्यास में पृथक–पृथक हैं । "वह/अपना चेहरा" उपन्यास में टूटन की समस्यायें उभारी गयी हैं । पद् यजा धोर पड़े ने लिखा है – "स्वातन्त्र्योततर काल में भारतीयों को जिन मोह भंग की स्थितियों का, उखड़े परिवेशों का मूल्यहीन मानसिकता का सामना करना पड़ा, उनका जीता – जागता दर्पण है ....।[2]

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम – पृष्ठ – 19–20
2. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम (वह/अपना चेहरा, टूटन की समस्यायें) – पृष्ठ – 67

इस उपन्यास में चित्रित सरकारी दफ्तरों को वातावरण, वहाँ काम करने वालों के दूषित दृष्टिकोण एवं उनकी सड़न भरी मानसिकता, वहाँ के अफसर और कर्मचारियों के मध्य स्वार्थी और निर्जीव सम्बन्ध यथार्थ का सजीव अंश प्रतीत होता है । यह उपन्यास एक आहत अहं की एक कहानी है । "वह/अपना चेहरा" सरकारी अधिकारियों की पारस्परिक खींचतान, छीना–झपटी और कशमकश का चेहरा है । नौजवान शुक्ला स्वभाव से दब्बू और ढीला एक छोटा–सा सरकारी अफसर है और अपने बड़े अफसर केशव दास के सामने स्वयं को हीन और लाचार अनुभव करता है । मिसेज रचना आजवानी अपने शारीरिक सौदे से बड़े अफसरों को खुश रखती है और पदोन्नति प्रापत करती चली जाती हैं इससे शुकला केशव दास को नीचा दिखाना चाहता है । फलतः वह उसकी पुत्री रेशमा से सम्बन्ध स्थापित करता है मिस आजवानी के साथ अर्द्ध बलात्कार कर स्वयं को टूटा सा महसूस करता है और हल्का सा पश्चाताप भी करता है । "श्याम अधिकारी" की दृष्टि में वह/अपना चेहरा" सूक्ष्म स्थितियों और बारीकियत का उपन्यास है । नायक की मनोदशा और उसके विचार क्रमों के उलझाव का चित्रण ही इस उपन्यास का मुख्य उद्‌देश्य प्रतीत होता है । शुक्ला के अर्न्तविरोध की उससे उत्पन्न छटपटाहट, खीझ और नपुंसक आक्रोश की कहानी है "वह/अपना चेहना" उपन्यास ।

"उतरती हुई धूप" उपन्यास स्वप्न भंग का यथार्थ चित्रण भाग नायक नायिका के प्रेम प्रसंगों से भरा है इसके कथानक के दूसरे भाग में नायक की 10 वर्ष के पश्चात् नायिका से भेंट होती है, अब वह एक पत्नी एवं एक बालक की माँ बन चुकी है अनेक पड़ाव पार कर जैसे ही वह यह सोचता है कि वह उसे अब भी उपलब्ध है वैसे ही पटाक्षेप होता है और नायक का स्वप्न भंग हो जाता है यह स्थिति विचित्र है, जो भावुकता प्रेम पक्ष में नायिका में है दूसरे पक्ष में नायक में उभरती है ।

"लाल–पीली जमीन" पर कई समीक्षकों ने लेखनी चलाई है । सर्वेश्वर दयाल सक्सैना ने इसे रास्ते की खोज पर कदम कहा है डॉ. विवेकी राय ने – गुंडाई – नंगई की

जीवन्त तस्वीर डॉ. चन्द्र कान्त वांदिवडेकर ने परिवेश की भयावह हिंसा शक्ति की अभिव्यक्ति डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने हिंसा की लाल–पीली जमीन और डॉ. श्रोत्रिय ने हाथों की छटपटाहट कहा है । इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास समस्या मूलक ही है ।[1]

यह उपन्यास सम सामयिक युवावर्ग में व्याप्त हिंसा और काम कुण्ठा के गहरे कारणों की पड़ताल करता है । लेखक ने बड़ी सफाई से उन ताकतों की पहचान कराई है जो युवा वर्ग में बढ़ती हुई हिंसा के कारण हैं । ये शक्तियाँ जातिवाद पर आधारित सामंतवादी है जिनकी गाँवों में बड़ी – बड़ी जमीदारियां हैं और जो शहरों में अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए हिंसात्मक शक्तियों को पालती हैं और जिनकी जरूरत अपनी राजनीति चलाने हेतु राजनेताओं को भी पड़ती है और जिनकी सुरक्षा पुलिस भी करती है जादव जी और चौबेजी बड़े ज़मींदार हैं । शिव मंगल, शिवहरे शिवराम, कल्लू, कैलाश और सुरेश ऐसे ही हिंसात्मक वृत्ति के नवयुवक हैं जो इनके इशारों पर चलकर कस्वा बस्ती को परेशान किये हुए हैं और लड़कियों के साथ छेड़ छाड़, यहाँ तक कि अपहरण करते हैं । नारायण और पण्डित तथं टयूटर मामा छुपे–रूस्तम ऐयाशी करते हैं ।

यह उपन्यास खोखले जर्जर होते टूटते पारिवारिक सम्बन्धों निम्न मध्य वर्ग की लड़कियों की उदास, अन्याय से जकड़ी निराशा और आत्म हत्या की ओर बढ़ती जिन्दगियों और शारीरिक शक्ति तथा दु:साहस न बटोर पाने वाले लड़कों के गहन अवसाद; हताशा और जड़ता का भी प्रभावशाली चित्रण करता है । यहाँ नैतिक मूल्य ठह गये हैं, सुरक्षा बेमानी हो चुकी है, हर रिश्ता अपना सम्बन्ध खो चुका है जहाँ धर्म की आड़ में लम्पटता और गुंडई पल रही है जहाँ वीरान लाल (हिंसा) पीली (पीड़ा) धरती ही पैरों के नीचे रह गयी है मास्टर कण्ठी की हत्या शान्ती से बलात्कार और उसकी मृतयु, मास्टर कौशल के साथ दुर्व्यवहार और उनकी पुत्री शैलजा का अपहरण कर बलात् विवाह इसी हिंसा के जवलन्त उदाहरण हैं ।

1- सृजन के आयाम, (लाल पीली जमीन) पृ0 87–112

कालेज का विद्रोह भी सामने है हड़ताल, जुलूस, नारेबाजी, पथराव, लाठी – गोली चलना कर्फ्यू लगने से लेकर युवा शक्ति की घोर अर्थहीन भटकन जैसी सारी समस्यायें इस उपन्यास में समावेश कर गई हैं । पूरे उपन्यास में ही विवशता लाचारी और भ्यं का दर्दनाक स्वर गूँजता है । इसमें पठनशील लड़के, गृहस्थ धर्म को निबाहने वाले स्त्री पुरूष युवा होती लड़कियां सब विवश हैं असहाय हैं आतंकित हैं ।

"हुजूर – दरबार" उपन्यास पर भी अनेक विचारकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं । राजी सेठ ने "पराभव का उत्सव" चन्द्र कान्त ने "सत्ता का क्रूर खेल" सुरेन्द्र तिवारी ने एक सशक्त विडम्बना का नाम दिया है तो डॉ. राज कमल बोरा ने "हुजूर – दरबार" बनाम कलम – कुर्सी दरबार" कहकर समीक्षा की है ।[1] गोविन्द्र मिश्र का यह उपन्यास भी समस्यामूलक है भारतीय सामंती ऐयाशी के पतनशील वर्णनों से प्रारम्भ होकर अन्त में जनतान्त्रिक ऐयाशी के पतनशील चरित्र को संकेतित कर समाप्त हो जाता है । रियासतें खत्म हो रही हैं, स्वतन्त्रता आन्दोलन पनप रहा है अंग्रेज देशी सामंतों की सत्ताकांक्षा को भुनाकर अब भी इसे दबा देने के लिए प्रयत्नशील है । महाराज रूद्र प्रताप पूर बिलासी हैं और विकृत भी । महाराज की युवारानी (नेपरल सरकार) सुन्दरी, बिलासी, प्रकृति की पुजारिन और "कामुक" है पर राजनीतिक सूझ–बूझ भी उसमें है । सिर्री राजा की क्रूरता, दीवान की कुटिलता और राज्य के ढाँचे में स्वाभाविक रूप से निहित षड्यन्त्र प्रपंच एवं स्वार्थन्धता जैसे पतनशील तत्व उपन्यास की समस्या है ।

राजी सेठ लिखते हैं – व्यवस्था पर चोट गोविन्द मिश्र के लेखन का निजी रवैया है । वहाँ उनकी दृष्टि एकदम पैनी हो जाती है । सरकारी सुरक्षा की छाँह में पनपता भ्रष्टाचार, प्रमाद, लापरवाही उत्तरदायित्व हीनता का बे–आबाज दमन चक्र अपनी धर से घायल भी करता है परन्तु लहू लुहान कर देने का प्रमाण भी उपस्थित नहीं करने देता । इस सर्वग्रासी हताशा में से एक परिणाम जरूर निकलता है कि व्यवस्था का रंग–रूप यदि हर जगह एक–सा और ऐसी ही सड़ान्ध पैदा करने वाला है तो वचाव की आशा व्यक्ति के

1- सृजन के आयाम, (हुजूर दरबार) पृ0 14।

अपने चारित्रिक विकास में ही जूझने की क्षमता बटोर सकने की है और कोई सहायता उसे सुलभ नहीं है ।[1]

"तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास पर भी की गई समीक्षकों ने समीक्षा प्रस्तुत की है कुछ पत्र समीक्षायें तो कुछ पूर्ण समीक्षा । श्री मधुरेश ने "तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास को रोशनी में सम्पन्न यात्रा कहा है और राजकुमार गौतम ने आधुनिक नारी की सम्पूर्ण अस्मिता कहकर समीक्षा की है । श्री राजेश जैन ने शहर और कस्बे के सांस्कृतिक टकराव की कथा कहा है । डॉ. माधुरी छेड़ा ने सार्थकता की तलाश बतलाया है तो चितरन्जन मिश्र मध्य वर्गीय चेतना का विकास इस उपन्यास में देखते हैं ।

"धीर समीरे" उपन्यास में ब्रज यात्रा के माध्यम से जिन्दगी के गहरे सवालों को उकेरने का प्रयास किया है । इसमें एक तरफ उच्च मध्यम वर्ग की बदलती तस्वीर को उसके विविध आयामों में प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी तरफ धर्म, दर्शन, अर्थ और व्यवहार के आपसी सम्बन्धों की उलझन को चित्रित किया गया है ।

देश काल और समाज–चित्रण :

देश काल और समाज – चित्रण की सम्यक योजना उपन्यास – कला की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण तथ्य है, क्योंकि जब किसी उपन्यास में उसकी वर्ण्य – वस्तु के अनुकूल देश काल और समांज – चित्रण की योजना की जाती है तो उसके फलस्वरूप पात्रों के चरित्रांकन और घटनाओं की विश्वसनीयता में अभिवृद्धि होती है अर्थात उपन्यास अधिक प्रभावशाली सद्धि होता है । मिश्र जी के सभी उपन्यास जीवन के यथार्थ से भली भाँति जुड़े हुए है । उपन्यास की समूची योजना आधुनिक जीवन पद्धति पर आधारित है और समाज

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम – (हुजूर दरबार – पराभव का उत्सव) पृष्ठ – 118–119

सदा से ही साहित्य का विषय रहा है समय का अन्तर अवश्य रहता है और उसके साथ ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक सम्बन्धों को लेकर नये नये दृष्टिकोण उनसे उत्पन्न होने वाली समस्यायें उभरती रहती हैं आज से सौ वर्ष पूर्व का भारतीय जीवन आज की तुलना में बहुत ही पिछड़ा हुआ लगता है । स्वभावतः उस युग की सामाजिक मान्यताएं, धार्मिक आस्थाएं, नैतिक विकास के साथ-साथ मनुष्य ने जीने के नये-नये रास्तों की खोज की है किन्तु आज का व्यक्ति सौ वर्ष पूर्व के व्यक्ति की तुलना में अधिक गम्भीर समस्याओं में जकड़ा हुआ है, मानसिक तनावों में घिरा हुआ है विशेष रूप से मध्य और निम्न मध्य वर्गीय परिवारों की स्थिति अत्यन्त भयावह होती जा रही है । मिश्र जी ने अपने उपन्यासों में इन्हीं सभी समस्याओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है जो देश और काल के अनुरूप है।

समाज चित्रण की दृष्टि से गोविन्द मिश्र के उपन्यासों में आज के जीवन की गन्ध आती है जिनमें आम आदमी की समस्याओं का चित्रण है इनके पात्र हमें जाने पहचाने लगते हैं इनमें वर्णित घटनाएं हमारे लिए चिर परिचित दिखाई देती हैं और इनके पात्रों को उन्हीं सामाजिक विषमताओं का सामना करना पड़ता है जो हमारे जीवन का अंग बन चुकी हैं । इसीलिए वे व्यक्ति के वहिरंग को नहीं उसके अंतरंग को देख लेना चाहते हैं उनकी रूचि घटनाओं अथवा परिणामों में उतनी नहीं जितनी कि उन घटनाओं और परिणामों के पीछे कार्यरत मानव मन में है । मानव मन के उद्‌घाटन में रूचि लेने के कारण ही मिश्र जी के उपन्यासों में व्यक्ति के अंतरंग पर अधिक बल दिया गया है ।

मिश्र जी ने अपने सभी उपन्यासों में देश काल के आधार पर समाज का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । मिश्र जी चीजों को वर्तमान पर झेलते हैं, उन्हें अतीत तक जहाँ तक वर्तमान की जड़े पहुँचती हैं, ले जाने का प्रयतन करते हैं और उसे गहराई को पूरी शक्ति के साथ ऊपर उठाकर उसे भविष्य क्षितिज फलक पर फैला देते हैं । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इनकी रचना दृष्टि वर्तमान को परम्परा से जोड़ती हुई भविष्य की थाह लेती है इसलिए उनका गन्तव्य न तो सामयिकता से बद्ध रहता

है, न इतिहास के बीत चुके सन्दभों में खो जाता है और न ही कटे भविष्य के अनदेखे सपनों में दौड़ लगाता है । समय की निरन्तरता का एहसास उनकी रचना प्रक्रिया का एक आहम् पहलू है वे सम्भवतया उस क्षण को प्राप्त करना चाहते हैं जिसमें अतीत का अतीत्व और उसका वर्तमानत्व इस प्रकार एक साथ सम्मिलित होते हैं जो अपनी निरन्तरता में नई उद्‌भावनाएं प्रकट करता है ।

मिश्र जी के सभी उपन्यासों में समाज का ही चित्र मिलता है । वे अपने आस – पास जो घटित होता है उसे देखते हैं और फिर उसे ही चित्रित करते हैं । "वह/अपना चेहरा" उपन्यास में मिश्र जी ने सरकारी दफ्तरों का वातावरण, वहाँ काम करने वालों की दूषित मानसिकता, भ्रष्ट चरित्र, वहाँ के अफसर और कर्मचारियों के बीच के मंतलबी सम्बन्ध एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश समाज का एक सजीव चित्र लगता है । मिश्र जी क्लर्को से काफी क्षुब्ध दिखाई देते हैं चूँकि वे स्वयं सरकारी अफसर हैं और दफ्तरों के माहौल से पूरी तरह बाकिफ हैं इसीलिए उन्होंने "वह /अपना चेहरा" में पात्रों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है जो देश काल के अनुरूप ही है । क्लकों की दुनियां लेखक को इसलिए दुःखी करती है क्योंकि वहाँ आदमी रेंकों की संज्ञाओं से नियन्त्रित है वह इन ऊपरी शिनाख्तों को तोड़कर मानवीय धरातल तक पहुँच क्यों नहीं पाता इसी का दुःख मिश्र जी को है इसीलिए वह अपने चरित्रों को प्रत्यक्ष या अप्रतयक्ष रास्ते से संस्कृति के शाश्वत स्त्रोतों की तरफ लिए चलता है ।

उतरती हुई धूप :

उपन्यास के माध्यम से मिश्र जी ने आज के कालेज और यूनिवर्सिटी में व्याप्त छात्र छात्राओं के अंतरंग सम्बन्धों को उभारने का प्रयतन किया है । जो कि वर्तमान समय में छात्र जीवन का एक अहम् हिस्सा बन चुका है । इस उपन्यास में मिश्र जी ने यूनिवर्सिटी के वातावरण, इलाहाबाद शहर के वातावरण को भी सुन्दर ढंग से उभारा है साथ ही छात्र छात्राओं का उच्छृखल व्यवहार, भावुकता, संजीदगी, और जिन्दगी के यथार्थ की कड़वाहट

से वेखबर छात्रों का जीवन चित्रण है इसमें । अरविन्द की नायिका "वह" का विवाह उसके माँ बाप की इच्छानुसार अन्यत्र कर दिया जाता है । अरविन्द की 10 वर्ष के पश्चात् अचानक नायिका से भेंट हो जाती है । अरविन्द 'वह" से फिर पहले जैसे अंतरंग सम्बन्धों की चाह रखता है किन्तु नायिका भारतीय समाज और अपने दाम्पत्य जीवन का हवाला देकर साफ इन्कार कर देती है । इस प्रकार इस उपन्यास में भारतीय समाज और उसकी मान्यताओं का सुन्दर चित्र मिलता है ।

लाल पीली जमीन :

उपन्यास में एक अंचल विशेष का चित्र दर्शाया गया है । लाल–पीली जमीन उपन्यास से आगे सीढ़ी दर सीढ़ी मिश्र जी का यह दृष्टिकोण प्रोढ़, "लाल – पीली जमीन' की तह में मिट्टी की उर्वरा एवं कुआंरी गन्ध बह रही है, इस उपन्यास में एक विशेष अंचल के तौर तरीकों, उत्सवों में व्यक्त सांस्कृतिक विरासतों तथा सामाजिक व्यवहारों को चित्रित किया गया है । उनके अन्तर्विरोधों के मध्य एक संगति को तलाशा गया है मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों के सभ्यतर होते विकास को देखा गया है और देखा गया है कि बुनियादी तौर पर भारतीय मनुष्य इतरों से कहाँ विशिष्ट है । "लाल – पीली जमीन" तक पहुँचने में मिश्र जी को बड़ी यातनायें झलेनी पड़ती हैं और संवेदनाओं का अनुभव करना पड़ता है यह एहसास "लाल – पीली जमीन" को एक रचना दिशा देता है साथ ही यह उपन्यास नये उपन्यास लेखन की एक निश्चित भूमिका भी प्रदान करता है इसमें चरित्रात्मकता की तलाश भी है और तराश भी । संवेदन की तरलता भी है और कला का निखार भी "शान्ति इसकी तलाश है तो केशव – तराश ।"

"हुजूर दरबार" :

संक्रान्ति के मोड़ पर व्यवस्था और व्यक्ति के द्वन्द्व की बहु आयामी कथा को

उद्‌घाटित करता है । सामन्ती विलासिता के मंच पर शोषण और विकृति की साझेदारी कैसे नियति और रूप तुष्टि के माया जाल खड़े कर शोषित प्रजाजनों की जागरूकता को समाप्त कर देती है इसका अति सूक्ष्म वर्णन इस उपन्यास में किया गया है । "हरीश" के रूप में एक ऐसा बुद्धिजीवी सामने आया है जो व्यवस्था की हर साजिश को समझता तो है पर उसके आक्रमण के सामने अपनी सारी विद्रोह शक्ति खो चुका है । परिणाम में एक लाचार, कहीं अवसरवादी, हीन ग्रन्थि का शिकार, जाने अनजाने विकृतियों का शिकार बना हुआ वह उसी अभिशाप को ढो रहा हे जिसे परम्परा से उसके बाप – दादा ढोते आये थे । रियासतों की समाप्ति के साथ राजतन्त्र समाप्त हुआ और आजादी के आगमन के साथ प्रजातन्त्र का शुभारम्भ हुआ । इतिहास का यह तयि कितना मिथ्या सिद्ध हुआ है । "कुर्सी" का बिम्ब एक आतंक की तरह अपने पंजे फैला रहा है, यह बिम्ब कभी धर्म, कभी राजनीति, कभी काम, कभी अर्थ–नीति के अस्त्रों से व्यक्ति की बौद्धिक चेतना को ललचाता, धमकाता उसे निगले जा रहा है । कलम को कुर्सी कैद कर चुकी है, सामन्त गये, सांसद आये, "हुजूर दरबार" बरकरार है इस प्रकार तमाम बर्हिमुखी मोरचों से लौटकर आखिर उस आन्तरिक आर्द्रता में शरण लेने वाला यह उपन्यास हर खण्डित व्यक्ति को अखण्डता का अनुभव कराता है ।

"तुम्हारी रोशनी में"

उपन्यास में आधुनिक स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों की एक विलक्षण परत को तलाशने का प्रयत्न किया गया है । यह परत एक ऐसी शारीरिक – मानसिक सांस्कृतिक संकुल की स्थिति है जहाँ रिश्ते अर्थवान बनते हैं इसके लिए हमारी सोच में गहरे उतरे हुए पुरूष प्रधान मूल्य दर्शन से मुक्ति जरूरी है । जो अपने आप में न सिर्फ मुश्किल है पीड़ा जनक भी है । क्या तब क्षणवादी जीवन दर्शन का हमें विश्वास करना पड़ेगा, जिसमें भोगा जा रहा क्षण ही मात्र सत्य होता है और समय के तमाम सन्दर्भ बेमानी होते हैं ? तब समर्पण, ईमानदारी, वफादारी जैसे मूल्यों का क्या होगा ? इन्हें नकार दें तो प्रेम और

स्वेच्छाचार में अन्तर कर पाना कठिन होगा इन्हें स्वीकार कर लिया तो स्वाधीन व्यक्तित्व का बिम्ब टूटता है तब ? विघटित व्यक्तित्व के अभिशाप को ढोते रहना क्या यही संवेदनशील व्यक्तित्व की मजबूरी है ? क्या इससे निजात सम्भव नहीं ? सम्भवतः यही प्रश्न मुख्य है जिसे इस उपन्यास में उठाया गया है । उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र सुवर्णा इसी प्रश्न के उत्तर तक पहुँचने की कोशिश उपन्यास में करती है और अनन्त की रोशनी में उसे तमाम प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं । भारतीय योग दर्शन इसी बिन्दु को वृहत्तर सन्दर्भो में विश्लेषित करता दिखाई देता है ।

"धीर समीरे" :

धीर समीरे में ब्रज यात्रा के माध्यम से जीवन के गहरे प्रश्नों को उठाने का प्रयत्न लेखक ने किया है । ब्रज यात्रा उपन्यास की एक तरह से भूमि तो है ही वह एक प्रतीक भी है जिसकी पृष्ठभूमि पर कर्म के प्रयोजन को ज्ञान और भक्ति, प्रेम और प्रकृति, सिद्धान्त और व्यवहार के सन्दर्भो में परखा गया है । यह यात्रा कुछ लोगों के लिए मनोरंजन है, कुछ के लिए ऊब और कुछ के लिए ऊब से छुटकारा पाने का साधन । कुछ के लिए यह यात्रा धर्म और आस्था है और अपनी संस्कृति को समझने का माध्यम । लोग चल रहे हैं जीवन यात्रा कर रहे हैं । एक तरफ उच्च मध्यम वर्ग की बदलती तस्वीर को उसके विविध आयामों में प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी तरफ धर्म, दर्शन, अर्थ और व्यवहार के आपसी सम्बन्धों की उलझन को चित्रित किया गया हे । अन्त में ऐहिक परन्तु आध्यात्मिक को पश्चिम परन्तु भारतीय को तरजीह देकर समस्या के समाधान को संकेत किया गया है । मूलतः नारी की मुक्ति – कथा को रूपायित करने वाला यह उपन्यास विभिन्न युग्मों की द्वन्द्व कथा का कहता चला जाता है ।

इस वैशिष्ट्य विवेचन की दृष्टि से ज्ञात होता है कि गोविन्द मिश्र की औपन्यासिक यात्रा मनुष्य की मौलिक शिनाख्तों की यात्रा है जिनमें मिश्र जी ने देश तथा काल

के अनुसार समाज का चित्रण किया है । लाल–पीली जमीन में "भूमि" उतरती हुई धूप और तुम्हारी रोशनी में "मनस्" हुजूर दरबार में "समाज" और धीर समीरे में आध्यात्म । इस तरह यह यात्रा जमीन से आध्यात्म तक संस्कृति की महत्वपूर्ण पर्तो को खोलती हुई मानवी किश्तों की गहराई को कुरेदने का प्रय त्न करती दिखाई देती है ।

भाषा–शैली :

कथावस्तु और चरित्र समावेश के समान है भाषा और शैली का प्रयोग साहित्य के लिए अत्यावश्यक और अनिवार्य तत्व है । भाषा मूल–तथ्य की संवेदनाओं से सम्पृक्त होती है और शैली तन्तत् कालीन किंग समकाली परिवेश को अभिव्यक्त करने की विधि कही जा सकती है । इस प्रकार भाषा और शैली के साहित्यकार से पृथक नहीं किया जा सकता है । जिस साहित्यकार की भाषा सशक्त नहीं और अभिव्यक्तिकरण की शैली प्रभावपूर्ण नहीं तो वह क्या साहित्यकार है ? अतः साहित्यकार को इन दोनों ही तत्वों का पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है । आज महाकवि गोस्वामी तुलसीदास, बिहारी, भूषण, जयशंकर प्रसाद, आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास, प्रेम चन्द्र इत्यादि साहित्यकार अपूर्ण अपनी भाषा और शैली अर्थात् संवेदनात्मक भावनाओं को सतत् प्रकार से व्यक्त कर पाने के कारण ही स्मरणीय है । यदि भाषा को अपने मूल कथ्य की संवेदनाओं से पृथक करके देखने का प्रयास किया गया तो, समझ लीजिए वह एक निर्जीव वस्तु ही सद्धि होगी । इसी कारण ऐसा मानते हुए ही सम्भवतया गोविन्द मिश्र ने एक स्थान पर लिखा है –

"मेरे लिए भाषा अलग से नहीं आती । वह परिवेश के उस टुकड़े से या फिर भाव–वेग से इतनी जुड़ी हुई होती है कि उसका अपना अलग से कोई अस्तित्व नहीं दिखता ।"[1]

---

1. धीरे समीरे – पृष्ठ 128

यह मान्यता बिल्कुल उचित ही प्रतीत होती है कि "कथ्य से अलग भाषा सम्भव नहीं ।"[1]

"मुंशी प्रेम चन्द ने अपने मूल कथ्य को जिस प्रकार की भाषा–शैली में प्रस्तुत किया है, उसी के फलस्वरूप वे उपन्यास–सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित हो सके हैं । डॉ. फणीश्वर नाथ "रेणु" आंचलिक परिवेश पर आधृत कथ्य को वैसी ही भाषा शैली में प्रस्तुत करने के कारण आंचलिक उपन्यासों के जन्मदाता अथवा सर्वश्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासकार माने जाते हैं । अब देखना है कि गोविन्द मिश्र के उपन्यास–साहित्य की भाषा और शैली किस मार्ग से होकर चली है ? वे प्रेम चन्द या "रेणु" के कितने निकट या दूर हैं ? अपने कथ्य को सशक्त और प्रभावशाली भाषा–शैली में प्रस्तुत करने में कहाँ तक सफल हुए हैं ।

गोविन्द मिश्र के विषय में इतना तो स्पष्ट है कि समकालीन हिन्दी कथाकारों में गोविन्द मिश्र एक प्रतिष्ठित नाम है । यात्रा की दृष्टि से अभी तक उनके छह (6) उपन्यास और (8) कहानी–संग्रह के अलावा (3) यात्रा–संस्मरण एवं कुछ समीक्षात्मक–वैचारिक (3) निबन्ध–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । प्रसंगवश यहाँ उपन्यासों की भाषा–शैली की समीक्षा ही प्रस्तुत की जा रही है ।

गोविन्द मिश्र का लेखन किसी भी "वाद" से प्रतिबद्ध नहीं है । अपने लेखन के गुणात्मक महत्व के कारण ही प्रत्येक हिन्दी भाषी सुधी पाठक उनसे भली–भाँति परिचित सा जान पड़ता है । उनका लेखन निरपेक्ष भाव से जीवन की बहु–आयामी सहज संवेदनाओं संवेदनाओं से जुड़ा हुआ है । वे मानव को किसी भी कटघरे में खड़ा न करके अपने लेखन में मानव–जीवन के वृहत्तर सम्बन्धों के रहस्यों की खोज के आकांक्षी हैं । इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है – "मानव–व्यथा तो मेरी जमीन है । मैं मनुष्य हूँ, मनुष्य की बात ही समझ सकता हूँ ....वह तो मेरी जमीन ही है, उस पर तो मुझे खड़ा रहना . ही है। लेकिन जैसे मोटे तौर पर साहित्यकार से यह अपेक्षा रहती है कि अपनी या अपने गाँव

---

1. धीर समीरे - पृष्ठ 133

की बातें करते–करते उसे ऊपर ले जाकर सबकी और सब गाँव की बात से जोड़ दें.... उसी तरह मैं स्वयं यह अपेक्षा करता हूँ कि मानव–जगत–व्यथा की बात हमेशा करते हुए भी ऊपर उठने की कोशिश करूँ, प्रकृति की अलौकिकता, सृजनात्मकता, चिरन्तनता, विराट सौन्दर्य की ओर जहाँ मेरी सर्जनात्मकता प्रकृति की सर्जनात्मकता से एक लय हो जाये, मनुष्य और प्रकृति की सर्जनात्मकता से एक लय हो जाये, मनुष्य और प्रकृति की दुनियां के भेद खत्म हो जायें ।"[1] गोविन्द मिश्र की इस आकांक्षा के कारण ही उनके लेखन में कथ्य और भाषा का परिवृत्त निरन्तर नवीन छटाओं के साथ विराजमान–सा प्रतीत होता है ।

गोविन्द मिश्र के उपन्यास साहित्य की कथा- सृष्टिपर दृष्टिपात करने पर उनकी भाषा के विविध रूप अत्यन्त सहजता के साथ परिलक्षित होते हैं । एक ओर तो महानगरीय परिवेश में उच्च प्रशासकीय वर्ग के जीवन की भीतरी पर्तो को अनावृत्त करने वाली भाषा का सहज रूप है, तो दूसरी ओर ग्रामीण एवं करवाई लोगों की रोमांचित करने वाली वन्य जीवन शैली का सहज अंकन दृष्टिगत होता है । तीसरी ओर कहीं ब्रजभाषा का प्रयोग उस परिवेश में किया गया है तो कहीं बनारसी का पुट भी आ गया है । इस प्रकार गोविन्द मिश्र की भाषा के निम्नलिखित रूप देखें जा सकते हैं –

1. सहज सरल आंचलिक भाषा,
2. साहित्यिक अथवा नगरीय भाषा,
3. व्यंग्यपूर्ण भाषा,
4. क्षेत्रीय भाषा, और
5 मिश्रित भाषा ।

---

1. दस्तावेज 40, जुलाई 1988 पृष्ठ 11

1. सहज सरल आंचलिक भाषा :

"लाल-पीली जमीन", "हुजूर-दरबार" और "धीर-समीरे" जैसे उपन्यासों में मिश्र जी ने आंचलिक परिवेश के अनुसार सहल और सरल भाषा का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं तो भाषा का यह रूप ठेठ ग्रामीण हो गया है। गोविन्द मिश्र की यह भाषा लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत के उस कस्बाई जीवन का चित्रण करती है जो अपनी अराजक जीवन-शैली का चुभन भरा अंकन महसूस होता है। इस भाषा के प्रयोग में तो मिश्र जी कहीं-कहीं प्रचलित ग्रामीण सामान्य-सी गालियों का भी प्रयोग करते देखे जा सकते हैं। मिश्र जी की इस भाषा के कुछ उद्धरण प्रमाण-स्वरूप यहाँ प्रस्तुत किये जा सकते हैं --

गोविन्द मिश्र की भाषा में प्रतीकात्मकता का भी समावेश देखा जा सकता है, यथा - "बस्ती की गन्दी नालियों में हर साल नये मच्छरों के झोर आते थे.... कुछ मरते थे.... कुछ आपस में मन-मन करते जूझते रहते.... कुछ रह जाते, अगले साल मरने के लिए, ये दो-तीन सॉड भी छुट्टा घूमते रहते थे.... कुछ दिनों में वे भी झुराकर कहीं बैठे पगुराते होते। यह तो इस बस्ती का जीवन-प्रवाह था....।[1]

सहज भाषा - "माँ और जीजी दरवाजा खुलते ही अन्दर आ गयीं। किसी ने उनसे यह नहीं पूछा कि कैसा रहा। केशव भी अपने पिता की नकल में मुँह बनाये रहा और बिना कुछ बोले पौर में लालटेन रखकर ऊपर छत पर चला गया।"[2]

सहल भाषा की लाक्षणिकता भी दृष्टव्य है - "....लाल कंकरीली मिट्टी, जिसे मुरम कहते थे।। सादा मिट्टी में उसे सानकर दीवान उठाते थे ताकि कच्चे-से थोड़ी ज्यादा पुख्ताई रहे।"[3]

---

1. "लाल-पीली जमीन" पृष्ठ 102
2. वहीं पृष्ठ 23
3. वही पृष्ठ 28

वहाँ सभ्यता इसी मुरम पर पड़ी थी । सारी की सारी बस्ती जैसे गाली–गलौज और मार–पीट के गारे–चूने से उठाई गई थी और उसी पर टिकी थी । यहाँ नौजवानी आदमी को आती थी तो ठीक कुत्ते की तरह । एकमदम ठक से भेजे में चढ़ जाती और बौखलाहट में मचमच करती रहती । "इस कमल के साले फूल को तोड़कर ही रहना है – यह यहाँ प्रेम की भाषा थी ।

"कब फँसोगी' ? यह प्रेम निवेदन था । बन्दर–बन्दरियों के नाच का चित्रण आंचलिक सहजता ही है –

"बन्दरिया मायके चली जाती है, बन्दर मनौतियाँ करता है, बन्दरिया नहीं मानती तो बन्दर लाठी उठा लेता है – और बन्दयिा को हॉक्कर ले जाता है ।"[1]

"हुजूर दरबार" के प्रारम्भ में ही देखिये कितनी सहज प्रतीकात्मक भाषा है – "तुम्हारे सिर में हम आग लगायेंगे और उसे माथे पर जलाये रखेंगे.... भौंय–भौंय । तुम्हारे दिमाग की धज्जियाँ उड़ाकर रख देंगे । तुम्हें गन्ना बना डालेंगे... गन्ना, तुम साले जाओगे कहाँ । हम तो तुम्हारे सेवक हैं.... तुम्हें चूसेंगे, तुम्हारी हड्डियों को चचोरेंगे और फिर तुम्हे घूरे पर फेंक देंगे । वहाँ पड़े–पड़े सड़ते रहना ।[2]

सिर्री राजा की फटफटिया खराब हो जाने पर मिस्त्री की भाषा देखिये – 'भैया, फटफटिया दस हो ठीक करवा लो.... पर सिर्री राजा के सामने न ले जाओ.... काम भी करो–दुलत्तियाँ भी खाओ... और कहीं फटफटिया दूसरे तीसरे दिन फिर खराब हो गई तो... भले ही कोई नया रोग हो, तो मिस्त्री को ढूँढवाकर, खुले आम पिटाई, ईश्वर सिर्री राजा की नजर न चढ़ाये ।"[3]

---

1. लाल–पीली जमीन – पृष्ठ 57
2. हुजूर दरबार - पृष्ठ 1
3. वही पृष्ठ 50

"धीरे–समीरे" से कतिपय उद्धरण – "गंगाधर महाराज के कान में पड़ी, वे लपककर शिकायत करने वाले तक पहुँचे और उसे घेर लिया – "काँटा ? हम तो जो हैं सो काँटा चुभवाने ही आते हैं भैया ....इन करील कुंजन के काँटे ।....[1]

"ये रेत है या मिट्टी ? ऐसा दिखेगा तो और गड़ेगी खूब गड़ेगी । अरे, यह तो रज है रज.... ब्रज रज । रज बोलो, खबरदार जो मिट्टी कहा ।"[2]

मथुरा के पण्डों का चित्रण कितनी सहजता लिए हुए है – "....अच्छा जाओ, मथुरा में पण्डे हो जाओ । अब मथुरा में ये सबेरे दण्ड पेलते हैं और फिर जमकर भोजन करते हैं । धर्म–कर्म के नाम पर माथे पर एक तिलक और कभी–कभी जमुना में स्नान । बाकी भंग में लाल आँखें, पेड़ों से फूला हुआ पेट और मुष्टण्ड शरीर लिए दिन भर साँड़ों की तरह घाटों के आस–पास ....कहीं सीढ़ियों पर पैर लटकाये बैठे किसी मोटे आसामी की प्रतीक्षा करते हुए, कहीं जजमान को इधर से उधर ले जाते हुए और कहीं किसी गली में यात्रियों से जोर–दबर्दस्ती करते हुए ।[3]

2. **साहित्यिक अथवा नगरीय भाषा :**

गोविन्द मिश्र ने जहाँ सहज सरल और आंचलिक भाषा को अपनाया है, वहीं उनके उपन्यासों में साहित्यिक भाषा के भी दर्शन होते हैं, जो सभ्य नागरिकों की नगरीय भाषा मानी जाती है । कुछ नमूने ये हैं – "आँखें एक–दूसरे में जाने क्या टटोलने लगीं । होठों की पत्तियाँ, लपलपाती कुछ खोजती ....फौहों की तरह दूसरे के घावों पर जीभ फेर देने को व्याकुल । उसके होठ ....हल्के लाल, चिकने ... भरे–भरे वर्षा में भीगते नवजात पुरइन दल–से काँप रहे थे । होठों की वह कँपकँपी .....किसी ज्वाला–रेखा की थिरक–सी ....जीवन ज्वाला ....आओ मुझमें उतर जाओं ....तुम आओ ....।"[4]

---

1. धीरे समीरे – पृष्ठ 17
2. वही पृष्ठ 17
3. वही पृष्ठ – 37
4. वही पृष्ठ - 37

यहाँ कितनी सरस श्रृंगारिकता झलक रही है जो साहित्यिक परिवेश का स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है ।

परिवेश का बाह्य–आन्तरिक दृश्यियों को आकार ने उसके परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति के पूरे चरित्र को चित्रित करने और मानव–मन की भीतरी पर्तो से उसकी छटपटाहट के ऊपरी सतह पर बिछा देने में गोविन्द मिश्र की भाषा–शक्ति देखते ही बनती है । कथ्य की आन्तरिक पर्तो से संवेदनाओं के अंकुर उगाती हुई उनकी भाषा पाठकों के मानस पटल पर अमूर्त भावों का चित्रीकरण करने लगती है –

"घूमती रोशनी का एक स्पर्श मुझ तक ही आया ....मुलायम–मुलायम स्पर्श खरोचों की चिकनाहट में बदलता हुआ । हवा के एक छोटे झोंके ने जैसे पर्दे को थोड़ा–सा खिसकाया था । स्नान के बाद शान्त–मन ठण्ड से सिकुड़ी हरी घास को सेंक देती सुबह नरम–नरम धूप ....पहाड़ी जमीन से उठता सोंधी–सोंधी गन्ध का फब्बारा–बारिश की पहली बौछार से झुलती हुई धरती से उठती महक ....मैं कहाँ–कहाँ डूबने–उतराने लगा था, उस क्षण ....।[1]

सूक्ति–परक भाषा का उदाहरण देखिये – "प्रेम की स्निग्धता ही तो खूब सूरती है ।"[2]

और "हम" अभिशप्त हैं, शायद इस साँचे का उस साँचे में जीने के लिए ।"[3]

एक और अन्य उद्धरण ....और यहाँ वह ....जिजीविषा ने ही जैसे शरीर धारण कर लिया हो । ऊष्मा उबल–उबल पड़ती हुई, पोर–पोर में आत्म–विश्वास लहकता

---

1. तुम्हारी रोशनी में – पृष्ठ 44
2. वही पृष्ठ 06
3. वही पृष्ठ 13

हुआ ....जैसे एक दम साफ हो कि उसे यह चाहिए और उसे पकड़ कर अपनी तरफ खींच लेने के अपने सामर्थ्य के प्रति भी सचेत । * * * * जो सामने है वही असल है । बुद्धि की वह चमक कि आसपास के अँधेरे को छाँटती हुई लकीर की तरह ऊपर उठे और वहीं स्थिर हो जाये ....जो नहीं है उसकी अटकलों में भटकते फिरने की बजाय जो है उसे जीवन ....सिर्फ जीना ।"[1]

इसी प्रकार "धीरे–समीरे" में भी साहित्यिक भाषा का प्रयोग पर्याप्त रूप में हुआ है । प्रातःकालीन वातावरण में यात्रा प्रारम्भ होती है तो प्रायःकालीन सौन्दर्य कितना मोहक है – "कीर्तनों के मिले–जुले स्वर और प्रातः बेला मन पर सात्विकता छा रही है । चारों तरफ हरीतिमा का विस्तार कहीं खेतों का फैलाव, कहीं वन–उपवन, कहीं छोटे–मोटे तालाब, सरोवर, कहीं सुन्दर वृक्षों की पंक्तियों और ऊपर सर्द से उड़–उड़कर जाते हुए पक्षी और सबको एकलय करता हुआ प्रातःकालीन समीर ।"[2]

यहीं गंगाधर महाराज का वह कथन जो श्रीकृष्ण को हृदय का काँटा बताता है– "....इन करील कुंजन के काँटे । हर साल इन्हीं काँटों से उलझने ही आते हैं और एक तो वह सबसे बड़ा काँटा है जो हृदय में गड़ा हुआ है, बाल–गोपाल का काँटा ।"[3]

महारास (रासलीला) के दृश्यांकन की भाषा की छटा कितनी साहित्यिकता लिए हुए है –

"भगवान प्रकट होते हैं । मुखकमल मन्द–मन्द मुसकान से खिला है, पीताम्बर पहने हैं । गले में वनमाला है । गोपियों के प्राणहीन शरीरों में जैसे दिव्य–प्राणों का संचार हो जाता है – ....और फिर आरम्भ होता महारास । रास मण्डल में श्रीकृष्ण के

---

1. तुम्हारी रोशनी में पृष्ठ – 23
2. "धीरे-समीरे" पृष्ठ - 17
3. वही पृष्ठ – 17

साथ नृत्य, प्रत्येक गोपी के लिए अलग–अलग एक कृष्ण "नृत्य उन्मत्ता की ओर बढ़ता जाता है ....भगवान स्वयं अपने हाथों से उसके स्वेदकणों को पोंछते हैं । सबाके उनके श्रीकृष्ण मिल गये हैं ।"[1]

ऐसे ही अनेक उद्धरणीय स्थल इस उपन्यास में अन्यत्र उपलब्ध होते हैं जो साहित्यिक भाषा को प्रकट करते हैं ।

3. **व्यंग्यपूर्ण भाषा :**

"वह/अपना चेहरा", "लाल–पीली जमीन" और "हुजूर दरबार" में व्यंग्यपूर्ण भाषा का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । इन कृतियों की भाषा में जहाँ प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता है वहीं व्यंग्य भी परिलक्षित होता है । यदि कहा जाय तो "हुजूर–दरबार" रचना स्वयं में एक व्यंग्य है, व्यंग्य है उन लोगों पर जो स्वार्थ सिद्धि हेतु दूसरों की जी हुजूरी में ही अपना कल्याण समझते हैं । "हुजूर–दरबार से इस व्यंग्यपूर्ण भाषा के कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किए जा सकते हैं – सर्वप्रथम मिश्र जी ने बाह्याडम्बर करने वाले लोगों पर करारा व्यंग्य किया है –

"जिसे तुम चरित्रवान् समझते हो वह ओहदा पाते ही गाँव की बीबी को नकारा गया और एक शहरातू पाल ली ....और वह जो तुम्हें ईमानदार दिखता है, वह रात को होटलों में जाकर घूस लेता है ....सबके सब रण्डीबाज हैं । सबकी डिफेन्स कालोनी में एक–से–एक कोठियाँ हैं । वे सिर्फ तुम्हें उल्लू बना रहे हैं ।"[2]

भारतीय संस्कृति का ढोंग रचने वाला महन्त अपने बच्चे को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ायेगा, क्योंकि उसे अपने भाग्य, भगवान और भारतीय संस्कृति पर भरोसा नहीं है –

---

1. "धीरे–समीरे" पृष्ठ – 48
2. हुजूर दरबार – पृष्ठ 2

"....मैं सोचता था इसे मंसूरी के स्कूल में भरती करा दिया जाये ....।"

"अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाओगे, महंत जी ? माँ साहिबा के स्वर में व्यंग्य का पुट था ।

हाँ, एक ही तो बच्चा है, इसका भाग्य बन जायेगा ....।[1]

सिर्री राजा का उग्रवाद और उसका आतंक आज के पनपते–बढ़ते आतंकवाद का प्रतीक है । आज के समय में अराजक तत्वों की बढ़ती गुण्डागर्दी (अराजकता) उससे परेशान प्रजा वर्ग तथा अधिकारियों की जाँ–हुजूरी पर यह सब जो गोविन्द मिश्र ने लिखा ने लिखा है, व्यंग्य ही है – द्रष्टव्य है – "तहसीलदार का बच्चा क्यों नहीं आया ....ए ....तुम ....इधर ....आओ कहाँ रहते हो ....कौन हो ?" जिसे उनकी नजर ने पकड़ लिया था उस बेचारे की घिग्घी बँध गयी । हाथ जोड़े डरते–डरते पहुँचा । सिर्री राजा का क्रोध रियासत में विख्यात था । लोगों की खैर इसी में थी कि उनकी फटफटिया चलती रहे, गुजर जाये ।[2]...

* * * *

हुजूर–मिस्त्री बुलवाया है ....। "किसी दूसरे ने कहा । चोप ....साले बात काटता है । मिस्त्री नहीं तहसीलदार को बुलवाया जाये । ए ....यूँ ....इसी वक्त दौड़ों । कचहरी में हो तो वहाँ से ....घर में हो तो वहाँ से ....जहाँ भी मिले उठाकर ले आओ और हमारे सामने पेश करो ।"[3]

* * * *

---

1. हुजूर दरबार – पृष्ठ 21
2. वही
3. वही

तहसीलदार को मामूली अभियुक्त की तरह सामने खड़ा किया गया । वह एक दुबला–पतला निरीह–सा दिखता हुआ व्यक्ति था । देखते ही सिर्री राजा उस पर बरस पड़े।

'क्यों वे, तू खुद को पहचानता है या नहीं, किसका नौकर हूँ ?

*　　　*　　　*

"हुजूर स्टेट का ।"

"और स्टेट क्या है ....हम क्या हैं ....तुझे पता नहीं कि स्टेट हम हैं और तहसीलदार पर बरसने लगे, गिनकर सोलह हण्टर लगाये ।

"धीरे समीरे" उपन्यास में यात्री कर वसूली पर व्यंग्य देखिये –

"सबसे भंयकर उत्तर प्रदेश है ।"

"अरे क्यों ? आप और मैं दोनों वहीं के है । अपने प्रदेश को ही बुरा बता रही हैं ? क्या उन गुण्डों का सोच रही हैं ?"

"आदमी तो जो है वह दिखता ही है, सरकार भी कम नहीं है । जहाँ उत्तर प्रदेश की सीमा आयी कि जल्लाद–सा आदमी यात्रियों से टैक्स वसूलता मिलेगा ....ठेकेदार का आदमी । कहता है सरकार ने ठेका दिया है । सहूलियतों के नाम पर कुछ नहीं सरकार की तरफ से, उल्टे कैसे चूसते और तंग करते हैं यात्रियों को ।"[1]

"वह/अपना चेहरा से" –

इस विभाग के अफसर की स्थिति जाल में फँसी मकड़ी जैसी है – इस तरफ पब्लिक, उधर उसका स्टाफ, उसे हमेशा टंगड़ी मार देने के चक्कर में, इधर सी.बी.आई.

---

1. धीरे समीरे – पृष्ठ 23

उसकी हर चीज को शक से देखता हुआ, इधर कमिश्नर – एक खास खुशामद की उम्मीद करता हुआ ....इधर बोर्ड उस पर हिदायत पर हिदायत लाता हुआ ।"[1]

और भी – "बहुत बुद्धिमान तो सरकारी अफसरों में शायद ही कोई होगा, होते भी है वे यहाँ आकर मामूली हो जाते हैं ....।"[2]

आगे और भी सुन्दर व्यंग्य है अफसरों की जी–हुजूरी पर "....क्योंकि अपने अक्षरों के आगे ही–ही" करते बैठे रहना मेरी भी आदत बन चुकी थी । वह घर में मुझे लात भी जमाता तो उसे मैं अपना चाचा ही कहता ...."[3]

4. **क्षेत्रीय भाषा :**

यद्यपि मिश्र जी ने अपने उपन्यासों में सहज सरल भाषा के रूप में समस्त उत्तर भारत की कस्बाई और आंचलिक भाषा को स्थान दिया है, किन्तु प्रसंगवश उनकी कुछ रचनाओं में स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग भी सहज ही हो गया है । "लाल–पीली जमीन' उपन्यास में बुन्देलखण्डी स्थानीय बोली आ गयी है तो धीर समीर में ब्रज भाषा का स्पष्ट किया गया है । यत्र–तत्र अवधी–मैथिली अथवा बनारसी भाषा का प्रयोग भी दिखाई देता है । "धीर–समीरे" में ब्रजभाषा का प्रचुर मात्रा में जो प्रयोग हुआ है, वह संक्षेप में प्रस्तुत है –

"कैसो मार्मिक प्रसंग है, जो है सो । शंकर जी अब श्री कृष्ण के दर्शनार्थ पहुँचे तो कैसे मैया जसोदा ने जादू–टोना के डरते लाल। कूँ छिपाय लियौ है । होनी देखो के का बख्त ललाकूँ अकेलो छोड गई और अब जो है सौ विलाप कर रही हैं । अवस्था

---

1. वंह/अपना चेहरा – पृष्ठ 17
2. वह/अपना चेहरा – पृष्ठ 20
3. वही – पृष्ठ 20

ढलवे पै नन्द बाबा कूँ पुत्र प्राप्ति भई, पर न जाने कौन की वक्र दृष्टि है कै हर दूसरे दिन कछू न कछू उत्पात होतो रहे है.... कैसी मति मारी गई मेरी जोवाय छोड़ कैं चली गई । अब कैं मिलाई देउ प्रभु, आगे ते सौगन्ध खातूं जो वाय एक पल कूँ अकेलों छोडू ।"[1]

और भी आगे के पृष्ठों में –

'महादेवी जी आये और जसोदा जू सों यों बोले कि ओरी मैया, हम तो तेरे लाल के दर्शन करबे कैलास ते आये हैं, सो जसोदा मैया ने अपने दोनों हाथ जोड़ दिए कि नाथ, तुम्हें लाल नाय दिखाऊँगी.... जि रूप देखिकै लाला उरपि जायगो.... ।"[2]

'हुजूर दरबार में काकू कवि राजा रूद्र प्रताप सिंह की प्रशसा में एक कवित्त ही ब्रजभाषा में सुनाता है –

"ऐसो प्रताप है श्री रूद्र प्रताप जू कौ * * * * ओखर कर्जे कूँ जब सॉय से उड़ाय देंय ।

"लाल-पीली जमीन" उपन्यास से – एक पण्डित अपनी पत्नी की पिटाई करता है तो उसकी क्या दशा हो जाती है, सहज-सरल ग्रामीण भाषायें देखिये – शब्द-प्रयोग –

"औरत के पीछे लंगोटधारी पण्डित फिर भाग.... फाटक के नीचे आने के पहले ही पत्थर की नुकेर खाकर औरत गिर पड़ी और उसके मुँह के एक तरफ खून की पतली धार बह निकली । वह सीकिया औरत थी । पण्डित की बीबी होगी तभी तो वह इतने धड़लले से मार रहा था । केशव ने उसे पहले कभी नहीं देखा था । पीछे पहुँचकर पण्डित ने उसे करोढ़ते हुए औरत के उस गट्ठर को एक लात जमाई । ....पस्त थी, बेहोश अब भी नहीं हुई थी, पर धोती संभालने की ताकत उसमें नहीं थी ।'

---

1. "धीरे समीरे" पृष्ठ 28
2. वही पृष्ठ 99

इसके अतिरिक्त परिवेश की सचेतनता उनकी शब्दावली में अपनी पूरी प्राण वत्ता के साथ उपस्थित होती है । "लाल-पीली जमीन' में बुन्देलखण्डी की ताजगी देखते ही बनती है । कुछ प्रयुक्त और प्रचलित शब्द द्रष्टव्य है – दलुद्दर, दालुद, झाड़-जंगल, रपटव्वन, पासा पड़ना, नाटपरे, पोछलना, लौंडा-पंती, सेंअना, जैसे शब्द ही नहीं, बल्कि कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुकत हुए हैं जो नितान्त आंचलिकता लिए हुए हैं, जैसे – चीप, घिनौंची, कल्पना, थेंता, नार, टिपिर-टिपिर, गोरू आदि-आदि ।

शब्द प्रयोग की भाँति ही मुहावरे और कहावतें भी सहज स्थान पर गई है, यथा – उदमी वैसे भान, न उनके चुन्दई न इनके कान", कर्महीन कल्पत फिरें, कल्पवृक्ष की छॉह 'झापड़ रसीद कर देना', "बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी", "लाल-पीली होना", "दुनिया को चराना" आदि ।

5. **मिश्रित भाषा :**

मिश्र जी के सभी उपन्यासों में मिश्रित भाषा का प्रयोग गया है । इस भाषा में हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तथा स्थानीय उपबोलियों के शब्दों का स्पष्ट मिश्रण खुलकर प्रयोग हुआ है । जिस प्रकार औषिधयों, चूर्ण आदि में अनेक जड़ी-बूटियों का कूट-छान कर उसे तैयार किया जाता है, वैसे ही मिश्र ने स्वाभाविक रूप से विभिन्न भाषाओं का मिश्रित प्रयोग कर अपने साहित्यिक रूप को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है । कहीं-कहीं तो अंग्रेजी के वाक्य ही रख दिये गये हैं । मिश्रित भाषा का रूप देखिये – 'हॉल एक-से एक सोफों और राजसी कुर्सियों से सजा-धजा था । नीचे बिछे मोटे-मोटे मार्के, चारों तरफ पीढ़ी-दर-पीढ़ी राजाओं के बड़े-बड़े रंगीन तैल चित्र, कुछ काले-सफेद फोटो भी ....शिकार किए गये शेरों के ऊपर बन्दूक रखे राजाओं और राज कुँवरों । दोनों तरफ डिजाइन बनाते हुए आदमकद शीशे ....तलवार, भाले पुरानी बन्दूकें वगैरह । यहाँ मिलने वाले इन्तजार करते थे, पहली पूछताछ होती थी । हमें ज्यादा नहीं बैठना पड़ा । एक ए.डी.सी. आया, हमें देखकर लौट गया और ....।[1]

---

1. हुजूर दरबार – पृष्ठ 19

इस अनुच्छेद में हॉल, फोटो, कार्पेट, डिजायन, ए.डी.स. शब्द अंग्रेजी भाषा और शिकार, बन्दूक आदम कद, खाल, हथियार, इन्तजार, ज्यादा, जल्दी शब्द उर्दू भाषा के लिये गये हैं शेष सामान्य बोलचाल की हिन्दी के हैं ।

धीरे समीरे में – "ओ हाउलवली आल दिस ....। क्या मिक्स्ड म्यूजिक । ऊपर नेचर, नीचे आदमी । यह है रियल इण्डिया ।"[1]

और भी – कम ऑन यार, ह्वाट इज रांग इन म्यूजिक ।[2]

'तुम्हारी रोशनी में' उपन्यास में भी मिश्रित भाषा के अनेक उद्धरण मिल जाते हैं । सुवर्णा के एक मंजिले घर का चित्र और उसकी साज–सज्जा का वर्णन अत्याधुनिक भाषा का ज्वलंत उदाहरण है जिसमें अंग्रेजी भाषा में प्रचलित सुख–सामग्री के नाम स्पष्ट लिए गये हैं - "ड्राइंग रूम–सोफों पर रंगीन कवर, खिड़कियों पर टंगे पर्दों के झीने अँधेरे में और भी चटख लगते हुए । दीवारों पर सजावट.... सौम्य – कुछ कपड़ों के टुकड़ों पर चित्र, कुछ मढी हुई तस्वीरें, एकाध पेण्टिंग भी, अमूर्त्त शैली की । करीब–करीब सभी सुविधाओं के नमूने थे वहाँ – सर्दी के लिए हीटर और गर्मी के लिए खिड़की पर लगा कूलर एवं कोने के आड़ देता एक बड़ा सा फ्रिज । ....साइड–टेबिल सिर्फ चार । एक किनारे से लगा टोस्टर तो दूसरी तरफ रिकोर्डप्लेयर । खाने की मेज के पास ही शीशे की आलमारी में चमकती हुई क्रौकरी । रिकोर्ड–प्लेयर की तरफ की आलमारी में कुछ किताबें ....।[3]

यहाँ लेखक ने ड्राइंगरूम, कवर, पेण्टिंग, कूलर, हीटर, फ्रिज, टोस्टर, रिकोर्ड–प्लेयर, क्रौकरी जैसे अंग्रेजी के शंब्दों का और खिड़कियों, पर्दों, करीब, नमूना जैसे

---

1. धीरे समीरे – पृष्ठ 21
2. वही पृष्ठ – 24
3. "तुम्हारी रोशनी में" पृष्ठ 18

उर्दू शब्दों का स्पष्ट प्रयोग किया है । इस उपन्यास में भी अंग्रेजी के वाक्य या वाक्यांश देखने के मिल जाते हैं – यथा –

"हाउ नाइस । मुझे भी पढ़ने का बहुत शौक है ।"[1]

और एक स्थल पर तो अंग्रेजी कविता की पंक्तियाँ तथा एक पूरा वाक्य ही प्रस्तुत किया है –

"जिंगिल वैल्स, जिंगिल वैल्स, जिंगिल आल दे वे ओ व्हाट फन हट इज टु राइट । इन ए वन हौर्स ओपिन स्ले"

जरा आँख में आँसू आ जाते तो माँ–बाप सिखाते – "डोण्ट बी सेण्टीमेंटल माय डियर, रीजन इट आउट ।[2]

एक उदाहरण "वह/अपना चेहरा" उपन्यास से भी.... "तुम्हारी रिपोर्ट्स", वह आगे कह रहा था, "कोई बहुत अच्छी नहीं है, तुम्हारे अफसर तुम्हारे बारे में अच्छा नहीं सोचते ।" यह जानकर मुझे धक्का लगा । "यों उसमें सब कुछ है – देखने में अच्छे खासे, बातचीत में तेज, स्मार्ट, फिर ये ल्यूकवार्य रिपोर्ट्स । वे कहते हैं कि बेफ़िक हैं, गैर–जिम्मेदार होने के हद तक, घमण्डी है – अपने अफसरों की एकदम परवाह नहीं करता, मनमानी करता है और अपने को वह कुछ समझता है जो वह नहीं है ।"

यहाँ रिपोर्ट्स, स्मार्ट, ल्यकवार्य शब्द अंग्रेजी भाषा के, बेफिक्र–गैर जिम्मेदार, हद, परवाह जैसे शब्द उर्दू के तथा अन्य कुछ शब्द ग्रामीण हिन्दी की झलक लिए हुए हैं।

---

1. "तुम्हारी रोशनी में" पृष्ठ – 22
2. वही पृष्ठ – 29

इस प्रकार ज्ञात होता है कि गोविन्द मिश्र की कोई एक निश्चित भाषा नहीं है । उन्होंने जहाँ अपने कथ्य के प्रभावशाली और रोचक बनाने के लिए स्थानीय । क्षेत्रीय भाषा को महत्व दिया है, वहीं अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग इन्हें साहित्यिक भाषा से दूर कर देता है जो भारतीय साहित्यिकार – विशुद्ध भारतीय साहित्यकार के लिए कहीं तक उचित नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार की भाषा का प्रयोग तो आजकल के फिल्मी उपन्यासकारों जैसे राकेश शर्मा, वेद प्रकाश शर्मा, गुलशन नन्दा – की भाषा में देखने के मिल जाता है, तो गोविन्द मिश्र और उनमें अन्तर ही क्या, सिर्फ कथ्य का और परिवेश का। वहीं इन फिल्मी उपन्यासों में भी तो समकालीन परिवेश को उभारा जाता है जो कुछ आज हो रहा है, वही हिंसा, चालाकी छलकपट, प्रेम–प्रसंग, हत्याएं, रिश्वत खोरी आदि–आदि फिर भाषा–शैली का ही क्या अन्तर रह गया ।

हाँ गोविन्द मिश्र भी अपनी भाषा के विषय में ऐसा ही स्वीकार करते है वे भी मानते हैं कि उनकी भाषा की कोई एक निश्चित दिशा नहीं है –

"मेरे लिए भाषा, शैली, फार्म यह लिखते वक्त अलग–अलग कोई माने नहीं रखता । भाषा की बात मेरे सन्दर्भ में बहुत की जाती है, कुछ उसकी ताजगी को लेकर, कुछ इसको लेकर कि वह शुद्ध नहीं है, उर्दू, अंग्रेजी और हिन्दी सब कुछ उसमें खिचड़ी है । मैं इस चीज को आलोचकों पर छोड़ता हूँ, क्योंकि यह आलोचना में बहुत पुराना ढर्रा हो गया है कि आप भाषा की अलग बातें करें और शैली और फार्म की अलग बातें करें और कथ्य की अलग बात करें ।"[1]

मिश्र जी की भाषा–प्रयोग के विषय में यहाँ शैलेश मटियानी का ही यह मत प्रस्तुतकर देना समीचीन प्रतीत होता है – जहाँ तक मेरी समझ का सवाल है, गोविन्द मिश्र अपनी पीढ़ी के शायद सबसे महत्वपूर्ण कहानीकार है, क्योंकि इनकी भाषा और कथ्य दोनों

---

1. साहित्य का सन्दर्भ – लेखक की जमीन – पृष्ठ 17

धरातलों पर उनके यहाॅं अपेक्षाकृत ज्यादा विस्तार है । बल्कि कहना तो यहाँ तक चाहूँगा कि अपनी पीढ़ी में भाषा और संवेदना के स्तर पर प्रेम चन्द के सबसे निकट गोविन्द दिखाई पड़ते हैं ।"[1]

इस प्रकार शैलेश भाई ने तो गोविन्द मिश्र को प्रेम चन्द के निकट ही ला दिया है, किन्तु डॉ. केशव प्रथम वीर ने लिखा है – "भाषा के विभिन्न रूपों और स्तरों पर श्री गोविन्द मिश्र का कहना सहज अधिकार है कि जब वे तुम्हारी रोशनी में, या धीरे समीरे जैसी कृतियों का लेखन करते हैं तो यह बिल्कुल पता नहीं चलता कि "लाल पीली जमीन" या वह/अपना चेहरा या "कचकौंध", "फॉस" और "पगला बाबा" की भाषा का सर्जक भी यही लेखक है । निश्चय ही समकालीन हिन्दी कथाकरों के बीच इस लेखक की भाषा के अध्ययन की आवश्यकता है ।"[2]

डॉ. केशव ने मिश्र जी की कृतियों की भाषा की सम्यक् समीक्षा के बाद अपना यह मत स्थापित किया है । यदि भाषा पर अधिकार की दृष्टि से देखा जाय तो गोविन्द मिश्र का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, वे जिस क्षण जहाॅं जैसे भाषा और शब्दों का प्रयोग करते हैं, वह वहाॅं बड़ा ही सार्थक और सटीक लगता है ।

मिश्र जी ने पुनः अपनी भाषा–प्रयोग पर टिप्पणी करते हुए कहा है – "भाषा के बारे में मेरा यही दृष्टिकोण है कि मेरी अपनी कोई भाषा नहीं है । अगर है तो वह ढर्रा है जो हर लेखक का बन जाता है, जरूर बनता है और उससे मैं बच नहीं सकता । लेकिन मैं चाहता हूँ कि उससे भी बचा रहता, वैसे ही जैसे वैचारिक स्तर पर अपने को खुला रखना चाहता हूँ । और इसलिए मैं जो परिवेश उठाता हूँ, उसमें भाषा ले जाने के बजाय वहाॅं की भाषा ढूँढता हूँ । मैंने अपने उपन्यासों में शहरी भाषा गाॅंव ले जाने के बजाय

---

1. गोविन्द मिश्र की प्रतिनिधि कहानियाॅं – शैलेश मटियानी – पृष्ठ 10
2. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम (गोविन्द मिश्र की भाषा) पृष्ठ 39

वहाँ की भाषा ढूँढता हूँ । मैंने अपने उपन्यासों में शहरी भाषा गाँव और कस्बे वाले हिस्सों में एक दम नहीं आने दी, कोशिश की है और अगर कहीं हुआ भी है तो उन कमेन्ट्स या टिप्पणी मे या थोड़ा–बहुत विश्लेषण के दौरान जहाँ आप मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना आवश्यक देखते हैं, वहाँ पर उस शब्दावली का इस्तेमाल होगा ही । तो खुद को मैं खुला रख ना चाहता हूँ कि भाषा भी जमीन की आये ।"[1]

भाषा–प्रयोग के सन्दर्भ में ही देखा जाय तो मिश्र ने अपने भावों को व्यक्त करने की जो शैली अपनायी है उन्हें भी निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. भावात्मक शैली ।
2. वर्णानात्मक शैली ।
3. विवेचनात्मक शैली ।
4. सूक्तिपरक शैली ।
5. व्यास या कथात्मक शैली ।
6. आलंकारिक शैली
7. आँचलिक शैली ।

शैली विचाराभिव्यक्ति का एक सशक्त प्रकार होता है । गोविन्द मिश्र के उपन्यासों में भाषा की भाँति ही शैली के भी निम्नलिखित विविध रूप दृष्टिगत होते हैं ।

भावात्मक शैली :

इस शैली के दर्शन मुख्य रूप से "तुम्हारी रोशनी में" और "धीर समीरे" उपन्यास में होते हैं किन्तु "लाल–पीली जमीन" और "हुजूर दरबार" में भी यह शैली

---

1. लेखक की जमीन – पृष्ठ 17

देखी जा सकती है । इस शैली के अर्न्तगत लेखक के भावपूर्ण विचार समागत होते है, जहाँ कहीं मिश्र जी भावना में बह गये हैं वहीं यह शैली उभर उठी है कुछ उद्धरण–

"पता नहीं.... अभी तक तो तुम्हें और इस प्यास को अलग–अलग करके नहीं देख पाई । लगता है जहाँ मन–शरीर आत्मा एक तरफ भागते हैं वहाँ शरीर पूजा है, जहाँ वे अलग–अलग होते हैं वहाँ शरीर बोझ है....पाप है ।"[1]

"ऊपर से वे शान्तिप्रिय लोग थे । हर घर में रामायण थी । "परहित सरसि धर्म नहिं भाई पर पीड़ा सम नहिं अधमाई" जैसी चौपाइयों का हजारों बार परायण कर चुके थे । अहिंसा, प्रेम और शान्ति इस देश की विरासत है.... इसे वे दिन में कई बार सुनते सुनाते थे.... बुद्ध और गाँधी जैसे नामों से उनकी जवानें सिंचती थी ।"[2]

"....जीवन से जिन्हें कुछ नहीं मिला उन्हीं के पास इतना था कि किसी की भी विपत्ति को ओढ़कर उसे थोड़ी बहुत सुरक्षा दे सकती थी.... वे नारियां जो हरेक के दुःख – पिराते में आगे आ जाती हैं – उसी वक्त निकलती हैं बाहर.... वरना कहीं पालतू सी चिपकी रहेंगी यों कि किसी की निगाह तक न जाये .... यह कौम न होती तो कितना मुश्किल हो जाता जीवन का चलना भी सब कुछ तहस नहस हो चुका होता ।"[3]

"कीर्तनों के मिले जुले स्वर और प्रातः बेला । मन पर सात्विकता छा रही है चारों तरफ हरितिमा का विस्तार । कहीं खेतों का फैलाव, कहीं वन, उपवन, कहीं छोटे मोटे तालाब सरोवर, कहीं सुन्दर वृक्षों की पंक्तियां और ऊपर सर्र से उड़–उड़ कर जाते हुए पक्षी और सबको एक लय करता हुआ प्रातः कालीन समीर ।"[4]

---

1. "उतरती हुई धूप" गोविन्द मिश्र - पृष्ठ 37
2. "लाल पीली जमीन" गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 62
3. लाल पीली जमीन" गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 288
4. "धीर समीरे' गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 17

"नन्द नन्दन गौरा चराकर वंशी बजाते हुए वन से लौट रहे हैं । गोधूलि बेला में उनकी छवि अतीव सुन्दर है । वंशी की तान सुनकर बृज गोपियां मुग्ध दौड़ पड़ी । प्रभु का मुख निहारती हुई वे दिव्य रस में डूब जाती हैं माँ यशोदा के हृदय में वात्सल्य की लहरें उठने लगती हैं वे अपने लाल की आरती उतारती हैं,.... यह है संध्या आरती के पीछे की भावना ।"[1]

सफलता और धन का सम्बन्ध इस शैली का अच्छा उदाहरण है –

"सफलता से बड़ा सत्य जीवन का कोई है नहीं.... सफल होने में ही वह अनुभूति होती है कि आप जीवित हैं आप हैं । सफलता की एक सभी को दिखाई देने वाली जो नाप है.... वह है पैसा । पैसा एक बड़ी हरती है बड़ी प्रेरणा है तभी उसके होने से लोग सुखी, न होन से दुःखी होते हैं ।"[2]

"कहते थे कि उस मन्दिर में एक आत्मा बसती है बहुत पहले एक राज कुमारी – राजकुवँर नाम था – ब्याह कर राजमहल में लायी गयी । कंचन की काया और सुबह की नई–नई धूप सी उम्र । महाराज अधड़े थे, पर थे महाराज – इसलिए सब कुछ क्षम्य था । उन दिनों रनिवास में सबका आना जाना नहीं था । पुरूषों का प्रवेश तो एकदम वर्जित था ।"[3]

खरे साहब समाज सेवा मानव सेवा के लिए समर्पित व्यक्तित्व था " "समाज ही उनका परिवार हो गया था । और काम – आन्दोलन, जेल.... फिर आन्दोलन । संघर्ष के अलावा कभी कुछ नहीं जाना । लगातार जूझते–जूझते उनका व्यक्तित्व कुन्दन सा निखर आया था । मन संन्यासियां जैसा.... स्वार्थ, लालच से कोसों दूर – फिर भी हरेक के

---

1. "धीर समीरे" गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 63
2. वही पृष्ठ 157
3. हुजूर दरबार गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 12

लिए आत्मीयता महसूस करने वाला ।"[1]

खरे का विजय जुलूस राज दरबार में पहुँचा महाराज ने खरे का स्वागत किया तो उस समय खरे साहब के उद्‌गार इस शैली का उदाहरण है –

"उनके लिए यह नैतिक शक्ति की जीत थी – महाराज से लड़ झगड़कर कोई चीज लेने की बजाय उनका हृदय परिवर्तन किया जा सका । उन्हें लगा कि चुनावों ने जहाँ प्रजा मण्डल को एक तरफ स्वीकृति दी है, वहाँ महाराज के मन का कलुष भी काफी हद तक धो दिया था । देश की जनता का सोच सोचकर उनके अन्दर कुछ पिघलने सा लगा – बिल्कुल गंगा मैया की तरह है अपने देश की जन धारा.... सदियों से निरन्तर बहती हुई जो कुछ भी जहाँ मिला उसे अपने में मिलाकर बहाती हुई.... निष्कपट, निष्कलंक धारा.... इतनी पवित्र कि स्पर्शा से ही मन का मैल धो दे ।"[2]

घर गृहस्थ के विषय में सुवर्णा के विचार दृष्टव्य है – "घर क्या है.... ? अपने आप में वह आदमी या कि औरत की जिन्दगी से तो बड़ी चीज नहीं कि उसे बनाये रखने के लिए एक जिन्दगी को खैदें रखा जाये । घर घर तभी होता है जब दोनों के अन्दर बराबर की कशिश हो, वरना तो वह पहले से ही टूटा रखा है । हम हिन्दुस्तानी लोग खास तोर से अकसर घर के नाम पर एक कब्र को ही ताकते बैठे रहते हैं । पश्चिम के लोग ज्यादा ईमानदार हैं – घर है तो वाकई घर है, वरन् नहीं ।"[3]

एक अन्य स्थल पर भी भावात्मक शैली का प्रयोग दर्शनीय है – "मैं अकेला नहीं हूँ.... ईश्वर तुम हो.... तुम्हारी परिकल्पना को मिटाकर कुछ लोगों ने ऊपर की दुनियां नष्ट कर देनी चाही और प्रेम को खत्म कर वे पृथ्वी पर की दुनियां को भी नष्ट

---

1. हुजूर दरबार गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 88
2. वही पृष्ठ 148
3. "तुम्हारी रोशनी में" गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 21

करने पर तुले हुए हैं । भावनाएं बोझ मानी जाती हैं । प्यारे से लोग कतराते हैं, भले ही आजीवन ऐसे रह जायें कि न किसी को प्यार दे सके, न किसी का प्यार ले सके.... बस खुद को बचाते हुए काटते रहें जिन्दगी.... खुश–खुश ।"[1]

2. **वर्णनात्मक शैली :**

किसी घटना या प्रसंग का वर्णन करने में इस शैली का प्रयोग किया जाता है । मिश्र जी ने भी नगर, वन, पर्वत, यात्रा या घटना, कथा-प्रसंगों के अवसर पर इस शैली को अपनाया है । कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है –

लाल पीली जमीन में मन्दिर में पूजा का वर्णन – "मन्दिर में नारायण पूजा करता था । राम लीला के समय वह राम बनता था । शाम को मन्दिर में मुहल्ले के जयादातर छोकरे जमा हो जाते थे – कोई शंख लेता था, कोई घड़ियाल, कोई घंटी, कोई घंटा । एक किनारे नगाड़े भी रखे हुये थें, जिन पर एक लड़का धम्म–धम्म मारता था.... आरती के बाद थोड़ा–थोड़ा प्रसाद मिलता था, कभी अनारदाने कभी शक्कर... कहीं गुड़ । गरी मिठाई के एक आध टुकड़े भी जब तक मिल जाते थे ।"[2]

राजनीति के विषय में वर्णन देखिये – "फिर हमारा तो क्षेत्र राजनीति का है । राजनीति की बुनियाद इतिहास के शुरू से ही हिंसा पर रही है । अशोक का.... जिसका इतना नाम लिया जाता है, दूसरों पर एक विश्वास या धर्म लादना, भले ही उतने क्रूड़ ढ़ंग से न हो - क्या एक बड़ी हिंसा का नमूना नहीं है ? राजनीति तो वह समुन्दर है, जहाँ हर तरह की हिंसा की धारायें नदियों की तरह आकर गिरती है । और फिर जो हिंसा इस समुद्र से निकलती है.... वह उसका सबसे विशाल स्वरूप है । उसी से वह परिवेश

---

1. तुम्हारी रोशनी में – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 109
2. लाल पीली जमीन – गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 31

बनता है जिसके यह छुटफुट हिस्से है – यह लड़ाकू इलाका भी अपनी रसद उसी परिवेश से पाता है ।"[1]

धीरे समीरे में ब्रजभूमि का वर्णन :

"कैसी है यह ब्रजभूमि.... क्या सूरदास, क्या परमानन्द दास, क्या नन्द दास, सब ब्रज की महिमा गाते हैं । रसखान तो यहाँ तक कहते है कि वे अगले जन्म में मनुष्य, पशु, लता जो भी हों, ब्रज में ही हो । यहाँ के गुल्म, लता, औषधि आदि कुछ भी बनने को तैयार है । और ब्रजराज का कहना, भगवान कृष्ण ने भी ब्रजराज का भक्षण किया था। ....जैसे कटंक.... कंकरमय इसी कारण हो गयी ।"[2]

नन्दन के लखनऊ पहुँचने पर जो मेल जोल, परिचय बढ़ा दृष्टव्य है – "वे अच्छे दिन थे । तकलीफ के बावजूद मन में खूब उत्साह, रोज नये–नये लोगों से परिचय, मुलाकात । उच्चकोटि के जिन लेखकों को कभी पढ़ा था, उनमें से भी दो से मिलना हुआ । सामने बैठकर बातचीत हुयी । दोनों ने ही अलग–अलग ढ़ंग से घर कुछ हतोत्साहित करने वाली बातें की.... लिखना पागलपन है, बड़ा मुश्किल है ।.... यह लम्बी साधना है ।"....1[3]

"हुजूर दरबार" में इस शैली के कुछ उद्धरण :

"दादा के जमाने में ही भैरों बब्बा के मन्दिर को राज घराने ने प्रतिष्ठा दी, उसकी जीर्णोद्धार किया गया और वह राज मन्दिर कहकर जाना जाने लगा । महाराज के कोई सन्तान न होती थी । दादा ने अनुष्ठान किया – मन्दिर में, फिर रनिवास में.... और एक साल के अन्दर ही महारानी के गर्भ आ गया । फिर दादा जी पुजारी से राजगुरू बन गये ।"[4]

---

1. लाल पीली जमीन – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 238
2. धीर समीरे – वही - पृष्ठ 8
3. वही – वही – पृष्ठ 65
4. वही – वही – पृष्ठ 3

माँ साहिबा हुजूर दरबार का प्रभाव बनाये रखना चाहती है, इसीलिये कहलवाती है.... "माँ साहिबा कहती है कि हमने जलने के बाद नेताओं को टेलीफोन कर दिया थं कि तुम्हें पनपने न दिया जाये । वे हमारे ही लोग है, उनका भी हुजूर दरबार है । हम तुम्हें इस्तेमाल में लाना चाहते थे, तो हमारे बाद भी तुम्हारा इस्तेमाल होता रहे.... हमारी तो बुनियादी बात है कि अगर तुम दुनियां में आये हो तो वह हमारे लिए ही..... और इधर उधर की नहीं सोच सकते । सोचोगे तो मारे जाओगे ।"[1]

"तुम्हारी रोशनी में" कृति में वर्णनात्मक शैली का प्रचुर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। एक पहाड़ी नदी का वर्ण देखे –

"एक पहाड़ी नदी..... मामुली नदी.... मामूली से किसी पहाड़ की अनजान खोह से झर झंरा कर नीचे मैदान में उतरती है और कुछ गाँवों को बाहर–बाहर से सींचती हुयी एक बड़ी नदी से जा मिलती है । छोटा सा सफर, लेकिन कितनी मुद्राएँ । कहीं बाँध के छेद से निकलती जल धारा सी झलल, झलल कहीं झरने की तरह बहती हुयी, कहीं सरोवर की तरह बँधी – धमी । खूब साफ और और मीठा पानी । ....छलल छलल बहता पानी ।"[2]

एक स्थल पर रमेश, सुवर्णा के सामने अपने देश की स्थिति का वर्णन करता है – "रमेश मेरे पास बैठा । वार्ता के लिए उसने उस दिन के अखबार की कोई रिर्पोट उठा ली । उस पर चलते हुये हम धीरे धीरे देश की सामाजिक, राजनैतिक स्थिति पर सरक गये । मैंने कहा – आजकल हिंसा बहुत बढ़ रही है - तो उसने आँकड़ों से बताया कि दूसरे देशों के मुकाबले भारत में हिंसात्मक घटनाएँ अब भी कम है । फिर पुलिस की बात उठ गयी । उसका कहना था कि ग्राफ पर आबादी, बेकारी और साथ–साथ अपराध ऊपर

---

1. "हुजूर दरबार" – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 332
2. "तुम्हारी रोशनी में" – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 7

चढ़ते चले गये, अब भी ऊपर जा रहे हैं.... लेकिन पुलिस कर्मियों की संख्या वही वर्षो पहले की है । उनकी मद्द के लिए जो उपकरण है, वें बहुत पुराने हैं और प्रशासनिक ढाँचा, कार्य प्रणाली वगैरह बाबा आदम के जमाने के चले आ रहे हैं ।"[1]

3. **विवेचनात्मक शैली :**

किसी वस्तु, विषय या तथ्य की विवेचना करते समय इस शैली का प्रयोग किया जाता है । मिश्र जी ने भी यत्र तत्र अपने उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग किया है । कुछ दृष्टव्य स्थल –

"वह/अपना चेहरा" उपन्यास में महत्वाकांक्षा और अधिकार की विवेचना देखिए – "मैं अतिश्योक्ति में नहीं पड़ रहा हूँ, यह वह आम वेवकूफी है जिसमें हम अफसर साँस लेते है - महत्वकांक्षा और अफसरी – दो एकदम विरोधी बाते हैं, पर जहाँ महत्वाकांक्षा की सड़ी जड़ कहीं रह जाती है तो औरतें अपनी साड़ी उठाये खड़ी रहती है, आदमी अपने चूतड़े हिलाता रहता हैं, उन सभी के सामने जहाँ से कुछ उम्मीद होती है । दोनों ही उदाहरण तब वहाँ मौजूद थे ।"[2]

"लाल पीली जमीन" उपन्यास में परिवेश – विशेष की विवेचना दृष्टव्य – "वहाँ की सभ्यता इसी मुरम पर खड़ी थी, सारी की सारी बस्ती जैसे गाली–गलौच और मारपीट के गारे–चूनें से उठायी गयी थी और उसी पर टिकी थी । यहाँ नौजवानी आदमी को आती थी ठीक कुत्ते की तरह । एकदम ठक्क से भेजें में चढ़ जाती और बौखलाहट में मच मच करती ही रहती । इस कमल के सालें फूल को तोड़कर ही रहना है – यह यहाँ की प्रेम

---

1. "तुम्हारी रोशनी में" - लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 49
2. "वह/अपना चेहरा" – लेखक वही – पृष्ठ 19

की भाषा थी, और कब फसोगी ? यह प्रेम निवेदन था । मुद्दर भाँजना और मूँछो वाला होकर लाठी लिये घूमना सर्वोत्कृष्ट मूल्य थे ।"[1]

स्थानीय और बाह्य निवासी औरत-मर्द में कितना अन्तर हो सकता है – इसकी विवेचना देखिये – शान्ती बड़े से कहती है – "मैं जानती हूँ कि तुम हिम्मती हो । वह हिम्मत भी आ जायेगी तुममें । तुममें, मुझमें एक फर्क है कि मैं यहाँ की पैदावार हूँ, और तुम नहीं हो, जानते हो यहाँ की हर औरत बड़ी सख्त होती है उसकी छाती, मर्द की छाती से भी ज्यादा मजबूत होती है । उस पर यहाँ के उच्चके आदमी किस–किस तरह दालें दलते हैं – मैं एक दिन इस मुहल्ले के मुँह पर कालिख पोतूँगी – मैं.... ।"[2]

"हुजूर दरबार" में स्वराज्य की विवेचना दर्शनीय है – "लोग कहते हैं कि हमने प्राँतीय स्वराज्य हाँसिल कर लिया है और आप कहते है कि यह स्वराज्य–फुराज्य कुछ नहीं है । प्राँत में नेता लोग मन्त्री हो गये तो प्रान्तीय स्वराज्य हो गया और आप भी ठीक कहते हैं कि देश में जब तक सबको खाना नहीं मिलता, तब तक स्वराज्य कैसा ? हमने आपकी और नेताओं दोनों की बातें मान ली है – पूरे हिन्दुस्तान – भर के लोगों को खाने को मिले तो वह होगा पूर्ण स्वराज्य कुछ लोगों को मिले तो वह होगा आँशिक स्वराज्य, पूरे जीवन भर खाने को मिले, तो वह होगा जिन्दगी भर का स्वराज्य, और एक दिन को मिल गया तो होगा दैनिक स्वराज्य ।"[3]

"मैं क्या चाहता हूँ जीवन से.... कोई अर्थ है यहाँ था कि बस उम्र की लड़ पर रेंगते हुये बीत जाना भर है । अगर सिर्फ बीतना भर है तो बीच–बीच में अर्थ की तलाश.... यह बेचैनी क्यों उठती है, एक दम तृप्ति, भरे जीवन में भी उदासी की हल्की

---

1. "लाल–पीली जमीन" – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 57
2. वही – वही – पृष्ठ 129
3. "हुजूर दरबार" – लेखक वही – पृष्ठ 87

छाया क्यों पड़ती रहती है, क्यों कोई पूरा सुखी नहीं हो पाता ? दूसरी ओर से देखें कि अगर जीवन सिर्फ शरीर यात्रा है, इसके अलावा कुछ नहीं है यहाँ तो.... फिर आदमी कैसी भी तकलीफ दुख, निराशा के बीच जीवित क्यों बना रहता है ।"[1]

"एक अन्य स्थल पर जीवन–मृत्यु के सम्बन्ध की विवेचना –

"जीवन की बात मृत्यु से शुरू की जानी चाहिए । जहाँ समाप्ति की नियति है, वहाँ हर कर्म क्षणिक और अपने लिए गढ़ा गया हर अभिप्राय भ्रम है । वगैर किसी भ्रम को पाले हुये यदि जीना है तो जीवन को सिर्फ छोटा सा सफर समझो । * * * प्रेम तकलीफ है.... पर आदमी बनने के लिए तकलीफ से गुजरना जरूरी है ।"[2]

4. **सूक्तिपरक शैली :**

गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यासों में यत्र तत्र अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया है –

"उतरती हुयी धूप" उपन्यास से :

"....लगता है, जहाँ मन शरीर आत्मा एक तरफ भागते हैं, वहाँ शरीर पूजा है, जहाँ वे अलग–अलग होते हैं, वहाँ शरीर बोझ है – पाप है ।"

पाप–पुण्य- पूजा तो बेमानी हैं – बोझ कह सकती हो ।" (पृष्ठ 37)

"दूसरों के लिए कितने हैं, जो मर पाते हैं ।".... (पृष्ठ 38)

"एक देवता पर दो फूल चढ़ सकते हैं, पर एक फूल दो देवता पर नहीं चढ़ते ।".... (पृष्ठ 38)

---

1. "तुम्हारी रोशनी में" – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 48
2. "तुम्हारी रोशनी में" – वही – पृष्ठ 112

"शान्ति खैर इतनी सुलभ वस्तु तो नहीं है.... ।" (पृष्ठ 90)

"लाल–पीली जमीन" से :

"साँप भगवान का रूप है.... वे मर्जी से जहाँ चाहेंगे जाएगें.... ।

"ईश्वर की इच्छा के बिना किसी का बाल बाँका भी नहीं होता ।" (पृष्ठ 42)

"दुधारू गाय की एकाध लातें तो सहनी होंगी ।" (पृष्ठ 45)

"ढिंगरा लगी गाय जायेगी कहाँ, लौटकर घर ही आऐगी ।" (पृष्ठ 57)

"हीरा – से लड़के को भरी गड़ई की तरह डुबो दिया.... ।

"जब अपनी ही थाली में छेद था, तो दोष किसे दिया जाता ।" (पृष्ठ 159)

"औरत तो गाय है चाहे जिधर को हाँक दो, चाहे जिस खूँटे से बाँध दो ।" (पृष्ठ 163)

"यशस्वी के पीछे-पीछे लक्ष्मी चलती है ।" (पृष्ठ 193)

"यो भी जी छोटा करने से क्या होगा ? ईश्वर के आगे किसी की चलती है ।" (पृष्ठ 287)

"धीरे समीरे" से :

"एक तो वह सबसे बड़ा काँटा है जो हृदय में गड़ा हुआ है, बाल गोपाल का काँटा ।" (पृष्ठ 17)

"असमय कोई संसार से जाता नहीं.... जो अवांछित है वह तो एकदम तो एक दम नहीं.... ।" (पृष्ठ 19)

"ईश्वर की परिक्रमा का भ्रम पाले हुये है, दरअसल वे केवल तरह–तरह की माया मोह के बिन्दुओं के ही चक्कर काट रहे हैं ।" (पृष्ठ 113)

""नन्दन को सह धर्मिणी नहीं, कामधेनु चाहिए थी, जो उसका घर–परिवार चलाने के साथ–साथ उसे भी ढोए ।" (पृष्ठ 51)

तुम्हारी रोशनी में :

"प्रेम की स्निग्घता ही तो खूबसूरती है ।" (पृष्ठ 13)

"(हम) अभिशप्त हैं, शायद इस साँचे या उस साँचे में जीने के लिए।" (पृ.23)

5. **कथात्मक या व्यास शैली :**

"धीर समीरे" उपन्यास में इस शैली के दर्शन अधिक होते है, क्योंकि इसमें श्रीमद्‌भागवत कथानुसार श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया गया है । कुछ उद्धरण –

"श्री शुकदेव जी महाराज बोले कि है राजन ! तृणावर्त नाम का एक दैत्य था । वह कंस का निजी सेवक था । कंस की प्रेरणा से ही बंवडर के रूप में वह गोकुल आया और बैठे हुये बालक श्री कृष्ण को उड़ाकर आकाश में ले गया । * * * नन्द नन्दन श्याम सुन्दर श्री कृष्ण को न देखकर उनके हृदय में भी बड़ा सन्ताप हुआ, आँखों में आँसू की धारा बहने लगी । वे फूट–फूट कर रोने लगे । (पृष्ठ 1)

चन्द्र सरोवर पर हुयी महारास लीला का प्रसंग :

"श्री कृष्ण गोपियों को समझा रहे हैं – हे गोपियों, रात्री का समय है, तुम सब कुलीन स्त्री हो, लौअ जाओ । मेरी लीला और गुणों का श्रवण, कीर्तन, ध्यान से मेरे प्रति

जैसे अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है, वैसी पास रहने से नहीं होती.... अपने–अपने घरों को लौट जाओ गोपियों में से एक कहती है - प्राण बल्लभ !.... हमें अपनी दासी के रूप में स्वीकार कर लो ।"

श्री कृष्ण जी यमुना जी के पावन पुलिन पर पहुँचते हैं और गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हैं ।.... कोई श्रीकृष्ण की बाँह को कसकर पकड़े हुये है, कोई श्रीकृष्ण से सटकर मधुर गान कर रही है, कोई भगवान की बाँह की सुगन्ध में डूबी हुयी है, कोई नाचते–गाते थक गयी है तो भगवान स्वयं अपने हाथों से उसके स्वेद कणों को पोछते हैं । सबको उनके श्रीकृष्ण मिल गये हैं ।"....(पृष्ठ 29–30)

ऐसे ही अनेक उद्धरण स्थल और भी हैं ।

6. **आलंकारिक शैली :**

मिश्र जी अप्रस्तुत विधानों का उपयोग करने में सिद्धहस्त हैं । उनकी भाषा शैली में उदाहरण, अतिश्योक्ति, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, प्रतीक आदि अलंकारों की सृष्टि अपने आप उतरती चली आती है ।

अतिश्योक्ति :

"वह हर लिहाज से वहाँ खड़ी सब लड़कियों से ज्यादा मीठी चीज थी.... ।" "(1)

---

1. "उतरती हुयी धूप" – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 11

उपमा :

"उसकी मुस्कराहट मे दीयों की तरह सुलग रही थी ....भरे भरे गदराये फलो के माफिक....(गाल) –(1)

"काली सड़क.... जहाँ तहाँ बिजली की रोशनी के नीचे शीशे की तरह चमक रही थी ।".... (2)

"बाहर निकलता भी तो चोर – जैसी झेंप के साथ ।" – (3)

उत्प्रेक्षा :

"मैं सोच रही थी कि इस तरह तुम्हारे साथ इस सिंहासन घर बैठे में कोई महारानी हूँ ।" – (4)

अनुप्रास :

"यमुना जी के पावन पुलिन पर पहुँचते है ।" - (5)

अन्योक्ति :

"काँटा" ? हम तो जो है सो काँटा चुभवाने ही आते है भैया, यह काँटा बाल गोपाल (कृष्ण) का काँटा है । – (6)

---

1. "उतरती हुयी धूप" - लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 11
2 वही – वही – पृष्ठ 50
3. "धीर समीरे" – वही – पृष्ठ 41
4. "उतरती हुयी धूप" – वही – पृष्ठ 45
5. धीर समीरे" – वही – पृष्ठ 30
6. "उतरती हुयी धूप" – वही – पृष्ठ 17

यदि कहा जाये तो "धीरे समीरे" की ब्रजयात्रा ही अन्योक्ति है ।

प्रतीकात्मक शैली :

"बस्ती की गन्दी-नालियों में हर साल नये मच्छरों के झौर आते थे – कुछ मरते थे – कुछ आपस में मन–मन करते जूझते रहते थे.... कुछ रह जाते, अगले साल भरने के लिये, ये दो तीन सॉड भी छुट्टा घूमते रहते थे.... यह तो इस बस्ती का जीवन प्रवाह था ।" – (1)

इस उद्धरण में बस्ती की गन्दी नालियॉं (मुँह लगो की), मच्छर जन समूह के, भन भन करना और जूझते रहना परस्पर कलह के, सॉंड़ (गुण्डो के) छुट्टा घूमना (मनमानी करने) के प्रतीक हैं ।

अन्य उद्धरण :

"बड़े ने उसे फिर अपनी बॉंहो में ले लिया, शान्ती एक दम लत्तर की झूल गयी। - (2)

"लेकिन तब वे एक दम लाल थे, साक्षात हनुमान की मूर्ति – (3)

ऐसे ही अनेक स्थलों पर स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग देखने को मिलता है ।

7. आंचलिक शैली :

गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यासों में जिस प्रकार आंचलिक और ग्रामीण भाषा को

---

1. "लाल पीली जमीन" – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 102
2. वही – वही – पृष्ठ 129
3. वही – वही – पृष्ठ 27

प्रधानता प्रदान की है, वैसे ही उनकी शैली भी यत्र तत्र आंचलिक हो गयी है । अनेकत्र आंचलिक शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है और ग्रामीण लोकोक्ति एवं मुहावरे भी स्वाभावतः यथावसर प्रयुकत होते चले गये है । "लाल पीली जमीन', 'तुम्हारी रोशनी में" और "धीर समीरे" में इस शैली के अधिक दर्शन होते हैं । कुछ उद्धरण प्रस्तुत है –

"मन्दिर की तरफ से एक दुबली पतली और चिल्लाती हुयी भागती चली आ रही थी"– अरे बचाओ रे, माड़ारो मोहे । पीछे–पीछे पंडित साँड की तरह बल बलाता चला आ रहा था । * * * * *

कुछ नहीं, औरत जात है, ससुरी छिनार ।" – (1)

शान्ती की मृत्यु पर उसकी माँ की दशा – "अरे मेरी फूल – सी बिटियाँ.... मुझे अकेला छोड़ गयी... अब मैं किसके सहारे रहूँगी ।.... बिटिया के हाथ पीले न कर पाई.... मेरी चिरैया फुर्र से उड़ गयी ।" – (2)

"दाब.... बहन.... साले जुबान लड़ाता है.... पिद्दी न पिद्दी का शोरबा ! एक हाथ दूँगा कि धूल चाटता नजर आयेगा ।" – (3)

"सुनन्दा" पर हमला करने वालों में से एक –

"मेरों कसूर नाँए हजूर...." "नाँऐ सरकार हम नॉय...." "का मालुम", "नॉय बु तौ मोय चौबे के यहाँ मिले थे ।' चौबे वे मथुरा के, जो तिरपाल दिए है न जात्रा के तांई उनके ठेकेदार" – हाँ मजूरी... तीन सौ रूपैया, कै जा स्त्री को मारि आये । या बेचि आओ । हम पकड़के बेचिवे के ताई लै जाय रहये । मारिबे कौ तौ सोचौहूँ नाओ । बाबू जी पेट के ताई – मेरे घर में हूँ बाल बच्चा है, बाबू जी मोकूं छोड़ि देउ, – बाबू. . ।" – (4)

---

1. "लाल पीली जमीन" – लेखक गोविन्द मिश्र – पृष्ठ 54–55
2 वही – वही – पृष्ठ 263
3. वही – वही – पृष्ठ 176
4. "धीरे समीरे" – वही – पृष्ठ 130–131

"मामूली से कपड़े और खेतिहर वाली पन्हइयाँ ।" – (1)

इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर भी आंचलिक शैली का उपयोग बड़े ही सहज और सरल लय में किया है जो स्थल की दर्शनीयता को प्रर्दशनीय बना देती है ।

उद्‌देश्य :

लेखक अथवा कवि का कोई भी कृत्य निरूद्‌देश्य नहीं होना चाहिए, सम्भवतया होता भी नहीं । साहित्यकार चाहे वह लेखक हो या कवि, वह उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध या यात्रा साहित्य ही क्यों न लिखता हो उसके लेखन का एक उद्‌देश्य होता है । गोविन्द मिश्र ने इस उद्‌देश्य पर टिप्पणी करते हुए कहा है – "जीवन जीवन है और साहित्य–साहित्य । दरअसल साहित्यकार का सारा चैलेन्ज यही होता है । कम से कम मेरा तो यही होता है, खासतौर पर उपन्यास लिखते वक्त कि पूरा का पूरा जीवन उठा सकूँ । लेकिन वैसा हो नहीं पाता, और जिसे हम अपनी आलोचनात्मक शब्दावली में कहते हैं – "स्ट्रक्चर्ड रियलिटी" उसके तहत ये पात्र एक खास कलात्मक निर्वाह में चलते–चलते, अपना असली रूप खो देते हैं ।"[1]

इससे यह आभास मिलता है कि गोविन्द मिश्र की उपन्यास रचना का उद्‌देश्य जीवन को व्यक्त करना है । "हुजूर दरबार" के विषय में प्रियंवदजी द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में मिश्रजी ने कहा है "साहित्य का काम है इस बुनियादी प्रश्न को लेकर, अगर हम यह मानें कि एक साहित्यकार का लेखन अन्ततः एक खास व्यक्ति या व्यक्तित्व का होता है तो शायद यह भी मानेंगे कि साहित्य का क्या काम है, यह वह अपने लिए तलाशता है । यही वजह है कि इस सवाल से करीब–करीब हर लेखक टकराता है और अपने हल ढूँढता है, उसमें तब्दीलियाँ भी करता चलता है । हुजूर दरबार मैंने किसी समस्या को एक्सपोज

---

1. लेखक की जमीन – पृष्ठ 53

हुए, बगैर रोये हुए । रोइये नहीं जो चीज है उसे पेश करिये और उसे उसके सारे आयामों के साथ पेश करिये तो वह आप से लोगों को हिलायेगी ।[3]

"वह/अपना चेहरा" उपन्यास में लेखक बाबुओं की दुनियां से दु:खी है क्योंकि वहाँ आदमी रैंको (पदों) की संज्ञाओं से नियन्त्रित है । वह इन ऊपरी शिनाख्तों को तोड़कर मानवीय धरातल पर क्यों नहीं पहुँच पाता है । इसीलिए वह अपने चरित्रों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति । से संस्कृति के शाश्वत स्त्रोतों की ओर लिए चलता है ।

"उतरती हुई धूप" उपन्यास जैसे लेखक के अंतरंग से जुड़ा हुआ है सीधे–सीधे । इसकी भावुक वैयक्तिकता भी अपनी व्यंजना में कस्बाई चेतना, प्रेम एवं सौन्दर्या जैसे वैश्विक मूल्यों का संकेत करती है ।

"लाल–पीली जमीन" उपन्यास की तह में मिट्टी की उर्वरा एवं कुँवारी गन्ध बह रही है । इसमें एक खास अंचल के तौर–तरीकों, रिच्युअलों, पर्वोत्सवों में व्यक्त सांस्कृतिक विरासतों तथा सामाजिक व्यवहारों को चित्रित किया गया है । इनके अंतर्विरोधों के मध्य एक संगति को तलाशा गया है । देखा गया है कि बुनियादी तौर पर भारतीय मनुष्य दूसरों से कहाँ तक विशिष्ट है ।

"हुजूर दरबार" संक्रान्ति के मोड़कर व्यवस्था और व्यक्ति के द्वन्द्व की बहुआयामी कथा को उद्घाटित करता है । सामन्ती विलासिता के मंच पर शोषण और विकृति की साझेदारी कैसे नियति और रूप–तुष्टि के माया जाल खड़े कर शोषित प्रजावर्ग की जागरूकता को समाप्त कर देती है इसका सूक्ष्म वर्णन इस उपन्यास में किया गया है ।

"तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास में आधुनिक स्त्री पुरूष की एक विलक्षण परत को तलाशने की कोशिश की गई है । और "धीरे–समीरे" में ब्रज–यात्रा के माध्यम से जीवन के गम्भीर प्रश्नों को उठाने का प्रयतन किया गया है । ब्रज यात्रा उपन्यास की कथा भूमि तो

---

1. लेखक की जमीन – पृष्ठ 31

है ही, वह एक प्रतीक भी है जिसकी पृष्ठिका पर कर्म के प्रयोजन को ज्ञान और भक्ति, प्रेम और प्रकृति, सिद्धान्त और व्यवहार के सन्दर्भो में रखा गया है । यह यात्रा कुछ लोंगों के लिए मनोरंजन है तो कुछ यात्रियों के लिए स्वयं लक्ष्य है, तो कुछ के लिए ऊब और उस ऊब से मुक्ति पाने का साधन ।

इस प्रकार मिश्र जी की रचना–प्रक्रिया का पहलू अत्यन्त मनोरंजक एवं दिलचस्प है । कथानक को कथ्य में वस्तुओं को उद्‌देश्य में उद्‌घाटित करने के लिए कला की चादर बुनते चले जाने की प्रक्रिया लेखक के लिए सही परीक्षा का विषय है ।

"मिश्र जी की रचना शीलता" निबन्ध में डॉ. भगवान दास वर्मा ने गोविन्द मिश्र के उपन्यासों की रचना–प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए उनकी उपन्यास–यात्रा का उद्‌देश्य कुछ इस प्रकार निर्धारित किया है – "मिश्र जी का लक्ष्य बिन्दु भारतीयता के उस अविच्छिन्न स्त्रोत में है, जिसकी वापसी सम्भवतः संस्कृति के पतनोन्मुखी प्रवाह को सुखा दे । गोविन्द जी एक आस्थावान् रोमांटिक की तरह अपनी सृजनात्मिका शक्ति को किसी वृहततर चेतना के सम्मुख "कृष्णार्पण" करना चाहते हैं – उनके लिए यह चेतना भारतीयता है ।[1]

श्री राज कुमार गौतम ने भी "गोविन्द मिश्र की औपन्यासिक यात्रा निबन्ध में मिश्र जी के समस्त उपन्यासों का एक रहस्यपूण्र उद्‌देश्य स्थापित करने का प्रयास करते हुए लिखा है – "गोविन्द मिश्र के लेखक की आन्तरिक आकृतियों को खोलकर देखने की बजह इसलिए जरूरी हो जाती है – क्योंकि उनकी कृतियों में यथार्थ की चीख तो है, लेकिन उस चीख का चेहरा और सेक्स कुछ ऐसा संश्लिष्टी–पुंज है कि उसका अवस जीवन दर्शन और समाजगत आदर्शो के माध्यम से आकर ग्रहण करने के बाद ऐंद्रजालिक हो उठता है । इस चेहरे (जो कई बार एक पूरे समाज का भी हो उठता है) में एक खूब सूरत बचपना और उसकी थान–दर–थान लम्बी स्मृतियॉ हैं जो अभी दिवंगत नहीं हुई है और जो इस देश के पिछले

---

1. गोविन्द मिश्र – सृजन के आयाम – पृष्ठ 31

लगभग साठ सालों का शब्दों में आकार लेता व्यक्तित्व है । सभी जमीनों पर जीवन सन्तुलन के छिन्न-भिन्न होते जाने का हाहाकार है तो एक चुपचाप आकार पैना करते आक्रोश की छवि भी है । प्रेम की उपस्थिति और अहसास से लेकर बलात्कार तक की थरथराहट में डूबता–उतरना - लेखक को लेखन–धैर्य और शब्द–संपदा दोनों ही स्तरों पर एक वयस्क प्रतिष्ठा भी प्रदान करता चलता है ।[1]

इस प्रकार सांस्कृतिक चेतना की चाहतों और परिवेश के प्रति संवेदनापूर्ण रवैया गोविन्द मिश्र का लक्ष्य मान लेना सम्भवतः अधिक सत्य है । अपनी स्मृतियों, बचपने और अनुभवों से उनकी बुनियादी निर्मित है जहाँ विघअन और युगबोध पर उनकी कथा–पीढ़ी खड़ी है । वर्ग चेतना का प्रयोग राजनीतिक–कला के द्वारा नहीं बल्कि फूल की भाँति अभिव्यक्त करना लेखक जाता है ।

निष्कर्ष :

गोविन्द मिश्र की औपन्यासिक यात्रा को निष्कर्ष निकालते हुए श्री राज कुमार गौतम ने मिश्र जी के प्रकाशित चार उपन्यासों "वह/अपना चेहरा" 'उतरती हुई धूप" "लाल–पीली जमीन" और "हुजूर दरबार" के आधार पर इनकी उपन्यास यात्रा को तीन खण्डों में विभक्त करते हुए लिखा है – लेखक की औपन्यासिक–यात्रा को तीन टुकड़ों में जोता जा सकना आसान है, पहला टुकड़ा है "वह/अपना चेहरा" दूसरा "उतरती हुई धूप" और तीसरा है "लाल–पीली जमीन" और "हुजूर दरबार" किन्तु अब तक इनके "तुम्हारी रोशनी में' और "धीर समीरे" दो उपन्यास और प्रकाशित हो चुके हैं, अतः मिश्र जी की औपन्यासिक यात्रा में चौथे टुकड़े के रूप में एक पड़ाव और सम्मिलित हो गया है । इस प्रकार इनके छः उपन्यासों को इनकी औपन्यासिक–यात्रा के चार पड़ावों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

1- गोविन्द मिश्र - सृजन के आयाम, पृ0 31.

प्रथम पड़ाव – "वह/अपना चेहरा'

द्वितीय पड़ाव – "उतरती हुई धूप"

तृतीय पड़ाव – "लाल–पीली जमीन" और "हुजूर दरबार"

चतुर्थ पड़ाव – "तुम्हारी रोशनी में" और "धीर समीरे"

सामान्य-परिचय के रूप में देखा जाय तो प्रारम्भ के दोनों उपन्यासों के नायक कुछ दुर्बल प्रकृति के प्रतीत होते हैं । ईमानदार तथा संजीदा भी हैं कि अपनी आन्तरिक भावना को हस्तगत आमलक की भाँति दिखाते फिरते हैं । "वह/अपना चेहरा" के "मैं" और "वह" एक शान्त लड़ाई सी लड़ते हैं और समग्र उपन्यास का वातावरण आद्यन्त युद्ध जैसी फनफनाहट छोड़ता रहता है ।

बौद्धिक रणनीतियां बनती–बिगड़ती दिखाई देती हैं । "उतरती हुई धूप" की कथा अनुभव प्रेम और यथार्थ के बीच व्यावसायिकता के दबाब कुंजों से निकलकर–छनकर उपस्थित हुयी हैं । इस उपन्यास में एक मामूली सी प्रेम–गाथा है इसके कथा–भाव में मात्र तृष्णा है जो प्रथमतया प्रेम के उफान में अपने सम्पूर्ण अर्थ नहीं खोल पाती और बाद में एकांगी हो उठती है ।

तत्पश्चात् "लाल–पीली जमीन" उपन्यास ऐसी कृति के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है जो लेखक की नई दिशा की प्रतीक है । उपन्यास की महत्वाकांक्षाएं यहाँ व्यापकता परहित चिन्ता से उस अर्थ में सम्बन्ध रखती है जहाँ असुरक्षा का विषैला वातावरण चारों ओर विषम घटनाओं से भरा–पूरा पटा हुआ है । इस उपन्यास में एक परिवेश विशेष की औसत एक दैनंदिन की घटनाएं दुर्घटनाएं सम्मिलित की गयी हैं जहाँ वर्तमान जीने की सर्वाधिक सामग्री जुटाये हुए सब कुछ घटता रहता है ।

"हुजूर दरबार" उपन्यास में रियासतदार महाराजाओं से प्रारम्भ होकर कहानी प्रजातन्त्र के महाराजाओं तक आती है इसका नायक एक पूरा परिवार है जो दादा–पिता और

मैं हैं । किस्सेपन में एक खास परिपक्वता और आस्था "हुजूर दरबार" की आत्मा को वशीभूत करके रख देती है । संतुलन की दृष्टि से यह उपन्यास रहस्यमयता लिए हुए है । इसमें सामंतवादी प्रजातन्त्र की कार गुजारियाँ, शोषक, शोषित, सत्य–अहिंसा असत्य सबको एकत्र कर दिया गया है ।

"तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास गोविन्द मिश्र के रचनात्मक नैरंतर्य के सही दिशा में अग्रसर होने का प्रमाण है । मिश्र जी इसमें आधुनिकता के प्रगतिशील पहलू को तो रेखांकित करते ही हैं । भारतीय समाज में नारी–मुक्ति के प्रश्न को भी पर्याप्त गम्भीरता और विश्वसनीयता के साथ उठाते दिखाई देते हैं कथा के स्तर पर बहुत-बहुत परिचित लगने के बावजूद भी यह कहानी अपने व्याख्यान और संवेदन के स्तर पर सार्थक रूप में अविष्कृत सी लगती है ।

"तुम्हारी रोशनी में" उपन्यास की भाँति ही "धीर समीरे" की भावभूमि विभिन्नताओं से परे है । उसमें समस्त सरोकरों की चर्चा है जो आज के पदार्थिक संसार की सीमितता के मध्य हाशिये की वस्तु मान लिए गये हैं । लेखक ने उन प्रश्नों से जूझने का प्रयास किया है जो हमारे भीतर परम्परा की निरन्तरता के कारण जागे हुए तो हैं, पर उन्हें बाहर ले आना आधुनिक कहलाने की इच्छा के विरूद्ध जाना है । उपन्यास के प्रारम्भिक परिवेश में कथा–वाचन, ब्रजरज, युगलमूर्ति, रास, कीर्तन और चलना–रूकना फिर चलना । ऐसा लगता है कि यह उपन्यास पहले से भीतर एक सकारात्मक स्थापना या तैयारी मांगता है या भारतीय–अस्मिता की भक्ति बहुल मनस–सत्ता के मानकर चलता है । इस कृति का मुख्य परिवेश है.... एक यात्रा । अपनी भौगोलिक, ऐतिहासिक स्थानिक सत्ता में प्रमाणिक। गतिमयता कथा का स्थाई भाव है । कथा की चलाय मानता भी यही यात्रा है ।

गोविन्द मिश्र की औपन्यासिक यात्रा निःसन्देह इन उपन्यासों के मध्य खोजी जा सकती है । अपनी स्मृतियों बचपने और अनुभवों पर उनकी नींव आधारित है जहाँ विघटन और युग–बोध पर उनकी कथा पीढ़ी अवस्थित है ।

चारित्रिक–समस्या को उभारने में उपन्यासकार के रूप में लेखक गोविन्द मिश्र ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है । उन्होंने अपने चरित्र–चित्रण के माध्यम से आज के अराजक, छल–छन्दपूर्ण, लूट–पाट और गुण्डागर्दी से घिरे परिवेश व वातावरण को उजागर करने का पूर्ण प्रयास किया है । "वह/अपना चेहरा" "लाल- पीली जमीन" और "हुजूर दरबार" उपन्यासों जी–हुजूरी करके राजनीतिक चालों में फंसे और स्वार्थ–सिद्धि में लगे लोगों की की कलई खोलने की चेष्टा की है । "तुम्हारी रोशनी में" और "धीर समीरे" में स्त्री पुरूष सम्बन्धों के साथ कर्तव्य–पालन की श्रेष्ठता पर बल दिया है कि बिना कर्तव्य किए कोई भी व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में बड़ा नहीं बन सकता । महान बनने की आधारशिला तो कर्तव्य पालन ही है ।

मिश्र जी के उपन्यासों की भाषा–आंचलिकता लिए हुए मिश्रित (खिचड़ी) भाषाओं का संगम है जिसमें उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भरपूर प्रयोग हुआ है । उद्‌देश्य की दृष्टि से गोविन्द मिश्र की औपन्यासिक यात्रा–ऐसा प्रतीत होता है, मनुष्य की मौलिक शिनाख्तों की यात्रा है । "लाल–पीली जमीन" में भूमि, "तुम्हारी रोशनी में" में मनस्, "हुजूर दरबार" में समाज और "धीर समीरे" में अध्यात्म – इस प्रकार यह यात्रा धरती से अध्यात्म तक संस्कृति की महत्वपूर्ण परतों को खोलती हुई मानवी रिश्तों की गहराई को उकेरने की चेष्टा करती है।

* *

* * *

* *